वर्ष ५
पूर्णाङ्क ५३

गुरुकुल-पत्रिका

दिसम्बर
१९५२

व्यवस्थापक
श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति
मुख्याधिष्ठाता, गुरुकुल कांगड़ी ।

सम्पादक
श्री सुखदेव दर्शनवाचस्पति
श्री रामेश बेदी आयुर्वेदालंकार ।

इस अङ्क में

मूल्य देश में ४) वार्षिक, विदेश में ६) वार्षिक। एक प्रति छः आने।

ॐ

गुरुकुल-पत्रिका

[गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय की मासिक पत्रिका]

स्वामी श्रद्धानन्द और गुरुकुल शिक्षा प्रणाली

श्री देवराज विद्यावाचस्पति

ऋषि दयानन्द के आदेश के अनुसार स्वामी श्रद्धानन्द जी ने गुरुकुल शिक्षा प्रणाली को आरम्भ किया। स्वामी श्रद्धानन्द जी ने अपने जीवन काल में राष्ट्र के सम्बन्ध में अनेक महत्त्वपूर्ण कार्य किये, परन्तु सब से अधिक महत्त्व का कार्य जो उन्होंने अपने जीवन में सब से प्रथम उठाया, वह गुरुकुल शिक्षा-प्रणाली का कार्य है। स्वामी श्रद्धानन्द जी तो अब नहीं रहे परन्तु उन के जीवन के महत्वपूर्ण कार्य को आज भी भारतीय जनता ने अमर बनाने का उद्योग आरम्भ कर रक्खा है।

गुरुकुल शिक्षा प्रणाली का मूलाधार ब्रह्मचर्य आश्रम व्यवस्था है। ब्रह्मचर्य आश्रम व्यवस्था के द्वारा भारत में प्रचलित बाल विवाह प्रणाली का समूल उच्छेद सम्भव है। जब तक देश में यह कुप्रथा विद्यमान है तब तक गुरुकुल शिक्षा प्रणाली की आवश्यकता प्रतिक्षण बनी ही रहेगी। इस के अतिरिक्त छूआछूत अनुचित जाति भेद देश में विद्यमान है तब कौन कह सकता है कि गुरुकुल शिक्षा प्रणाली की आवश्यकता नहीं। जब तक देश के नवयुवक यह नहीं समझ जाते, और उन के आचरण पूर्ण सदाचारियों के से नहीं बन जाते तब तक गुरुकुल शिक्षा प्रणाली की आवश्यकता बनी ही रहेगी।

स्वामी श्रद्धानन्द जी ने ऋषि के आदेशानुसार और अपनी दूरदर्शिता के द्वारा गुरुकुल शिक्षा-प्रणाली का प्रारम्भ घनघोर जङ्गल के अन्दर पर्वत की तलहटी में और गङ्गा के पवित्र जल के किनारे किया था।

गुरुकुल शिक्षा प्रणाली केवल नवयुवकों में ही जीवन प्रदान करने के लिए नहीं है किन्तु उन के साथ दिनचर्या में रहने वाले और उनको अध्यापन कराने वाले तथा अन्य सहायक वर्ग सभी में जीवन प्रदान करती है।

गुरुकुल शिक्षा प्रणाली के सञ्चालकों को और स्वामी श्रद्धानन्द जी को भी स्वयं यह कठिनाई आती थी कि उन्हें ऐसे योग्य विद्यार्थी नहीं मिलते थे जो ऋषि दयानन्द के उद्देश्यों के अनुसार चलायी गई गुरुकुल शिक्षा प्रणाली को पूरा करने में समर्थ हों।

गुरुकुल शिक्षा प्रणाली जिस का विधि विधान ऋषि दयानन्द ने किया है और जिसका मूर्तरूप स्वामी श्रद्धानन्द ने अपने त्याग और तपस्या के द्वारा दिखलाया है वह एक महान् शिक्षा प्रणाली है। उस के प्रसार के लिए गुरुकुल में पढ़ने वाले एक २ ब्रह्मचारी को कटिबद्ध होना चाहिए। प्रत्येक मनुष्य अपने आप का स्वयं निर्माता है। परमात्मा की कृपा से यदि कहीं से उस को सहायता मिल जाती है तो उसे परमात्मा का धन्यवाद करना चाहिए। और यदि कोई सहायता प्राप्त नहीं होती तो आत्मविश्वास के साथ स्वयं आगे बढ़ना चाहिए। मनुष्य में आत्मविश्वास का उत्पन्न होना यह परमात्मा की बड़ी भारी सहायता है।

ब्रह्मचर्याश्रम में ब्रह्मचारियों को यह समझना चाहिए कि उन्होंने बिना अन्य की सहायता के स्वयं ही तपस्या से स्वावलम्बी और संयमी ब्रह्मचारी बनना है। वे अपने जीवन के स्वयं निर्माता हैं इस लिए वे अन्य किसी को दोष नहीं दे सकते, जैसा वे चाहें स्वयं बन सकते हैं। जिन में इस प्रकार का आत्मभाव का उद्गम नहीं होता वे परमुखापेक्षी रहने के कारण अवश्य शिथिल रहते हैं। गुरुकुल शिक्षा प्रणाली इसी प्रकार के ब्रह्मचारियों से सफल होती है, जिन में आत्मभाव का उद्गम हुआ होता है। ऐसे ब्रह्मचारियों से ही गुरुकुल शिक्षा प्रणाली की प्रतिष्ठा होती है। इस लिए स्वामी दयानन्द के आदर्शों को अपने जीवन में उतारने के लिए आत्मप्रतिष्ठ होना चाहिए। और स्वामी श्रद्धानन्द जी का कृतज्ञ होना चाहिये जिन्होंने उन के लिए आदर्श रूप में गुरुकुल शिक्षा प्रणाली की स्थापना की। गुरुकुल में पढ़ते हुए हम इस बात को भूल जाते हैं कि जो कुछ बनना है वह हम ने स्वयं बनना है। गुरुकुल शिक्षा प्रणाली का शिक्षण केवल पुस्तकों का शिक्षण नहीं है किन्तु शिक्षण को शिक्षार्थियों ने आचार द्वारा प्रकट करना है। विद्या हमें तभी भार मालूम होती है, जब उस का सम्बन्ध हमारे आचरण से पृथक् रहता है। इसलिए हम यह कह सकते हैं कि गुरुकुल शिक्षा प्रणाली सदाचार की शिक्षा है केवल पुस्तकों की शिक्षा नहीं। गुरुकुल में शिक्षा पाकर भी यदि बालक सच्चे अर्थों में शिक्षित सदाचारी नहीं बन पाता है तो यह उस का बड़ा दुर्भाग्य है! और उस को समझना चाहिए कि उसे उत्कृष्ट जीवन बनाने के लिए अन्य कोई अनुकूल स्थान नहीं है।

गुरुकुल में रहते हुए ब्रह्मचारी ने जिस जीवन का अभ्यास करना है वह सन्तुलित जीवन है। सब भावों के पूर्ण सन्तुलन का नाम ब्रह्म है उस में किसी प्रकार का दोष नहीं रह सकता। गीता में कहा है—

'निर्दोषं हि समं ब्रह्म'

इस वाक्य में ब्रह्म को सम शब्द से कहा है जिस में किसी प्रकार का दोष नहीं। किसी भाव का हीन मिथ्या वा अतियोग होता है तो दोष उत्पन्न होता है। और सम योग रहते हुए किसी प्रकार का दोष होना सम्भव नहीं होता। शरीर के धातुओं मे धातुओं का परस्पर समयोग रहना चाहिये अर्थात् अनुकूलता रहनी चाहिये। मन की शक्तियों में और विचारों मे परस्पर अनुकूलता रहनी चाहिए। उनका हीन, मिथ्या और अतियोग नहीं होना चाहिये। इसी प्रकार इन्द्रियों के व्यापारों में हीन, मिथ्या और अतियोगों को दूर कर के समयोग के द्वारा उन के व्यापारों में सन्तुलन रहना चाहिए। इसी प्रकार बुद्धि में सन्तुलन के द्वारा प्रतिभा या सूझ का अभ्यास बढ़ाना चाहिये। और इसी प्रकार निर्दुष्ट जीवन में रहते हुए आत्मा मे अन्तर्निहित शक्तियों का विकास करना चाहिये। जो ब्रह्मचारी अपने शरीर, मन, इन्द्रिय बुद्धि और आत्मा को सन्तुलित जीवन में रखता हुआ उत्कृष्ट जीवन का अभ्यासी बनता है वह सचमुच ब्रह्म का उपासक और सच्चे अर्थों में ब्रह्मचारी कहलाने के योग्य होता है। गुरुकुल शिक्षा प्रणाली किसी बालक को पूर्वोक्त अर्थों में अर्थात् सन्तुलित जीवन बनाने में सर्वोत्कृष्ट साधन है। ऐसे सर्वोत्कृष्ट साधन को जिस महापुरुष ने हमारे लिये उपस्थित किया उन स्वामी श्रद्धानन्द जी को हमारा शतशः प्रणाम है।

★

अरबी लिपि का देवनागरी से सम्बन्ध

(एक तुलनात्मक अध्ययन)

डॉक्टर एस० महदी हसन

सामान्यतः किसी लिपि के विकास का अन्वेषण करने के लिए दो पद्धतियाँ काम आती हैं। इन में सब से उत्तम पद्धति पेलियोग्राफी (पुरा-लिपि) मानी जाती है, जिस में प्राचीन, मृत लोगों या जातियों के शिलालेखों का अध्ययन किया जाता है। इस से कुछ निचली पद्धति सुलिपि-कला (केलियोग्राफी) की है, जिस का अब तक लगभग बिल्कुल विकास नहीं हो सका है। हम यहां इस दूसरी पद्धति का प्रयोग करें तो अरबी अक्षरों (वर्णों) की देवनागरी के वर्णों से भली भांति तुलना की जा सकती है और इस के परिणाम से स्वयमेव यह झलकता है कि सम्भवतः अरबी का उद्गम-स्थान 'भारतीय' ही रहा होगा। कम से कम यह तो अब भली भांति सिद्ध हो चुका है कि अरबी अङ्कों (न्यूमरल्स) का विकास भारतीय अङ्कों से ही हुआ है। अभी हाल में ही प्रो० फड़के ने—'अल् अर्वाह्' नामक पत्रिका (जर्नल) के जुलाई १९४७ और जनवरी १९४८ के अङ्कों में—इस विषय पर अपना निर्णयात्मक वक्तव्य दिया है। अरबी लिखने की सामान्य रीति दायीं ओर से बायीं ओर को लिखने की है, पर इस के विपरीत उस के अङ्क बायें से दायें को लिखे जाते हैं (जैसे देवनागरी अङ्क) इस लिये यह मानना अपेक्षाकृत अधिक सरल है कि—'अरबी अङ्क वस्तुतः भारतीय अङ्क ही हैं।' और अपने अङ्कों के इस उद्गम को स्वयं अरब लोगों ने ही प्रकट कर दिया है। वे अपने अङ्कों को 'हिन्दसा' कहते हैं जो सम्भवतः 'हिन्दो-दश' (भारत की दस इकाइयों) का रूपांतर है। जैसे एक स्वाभिमानी मालिक अपने घोड़े को गर्व से 'अरब' कहना अधिक पसन्द करता है, और इसी प्रकार जैसे मिट्टी के प्राचीन चमकीले बर्तनों (पोर्सलेन) का कोई संग्रहकर्ता अपनी उन सुन्दर वस्तुओं को (क्योंकि प्रारम्भ में वे चीन और जापान में बनती थीं, इस लिए) 'चीनी' कहता है—इसी प्रकार [हिन्दुस्तान से] प्राप्त इन अङ्कों को शुद्ध रूप में केवल 'दसा' न कह कर अरबों ने उन्हें 'हिन्दसा' ही कहा परन्तु अब जब कि हम अरबी लिपि की तुलना करने लगते हैं और वह भी देवनागरी से तो—क्योंकि अरबी दायें से बायें को लिखी जाती है और देवनागरी उस से बिल्कुल विपरीत दिशा में [बायें से दायें को], इस लिये—हमें ये लिपियाँ नितांत भिन्न प्रतीत होती हैं और उन का निकास एक ही स्थान से हो सकता है—यह तो कल्पना ही नहीं होती। तथापि यहां यह दिखाने का प्रयत्न किया गया है कि उन दोनों में परस्पर निकटतम सजीव सम्बन्ध है। वस्तुतः सामञ्जस्य का भी तकाज़ा है कि किसी लिपि के अङ्कों [न्यूमरल्स] और वर्णों [लैटर्स] का निकास एक ही स्रोत से होना चाहिये

प्राचीन अरब लोग एक गरीब जाति के होते थे और इस लिये लेख-सामग्री के रूप में वे केवल हड्डियों का ही प्रयोग कर सकते थे। उस समय उन की अपनी कोई लिपि भी न थी अरबी लिखने के लिए वे हिब्रू लिपि के अक्षरों का प्रयोग करते थे। हिब्रू में [अलग अलग लिखे जाने वाले] 'बड़े अक्षर' प्रयुक्त होते हैं जब कि भारतीय सीरियक और मोड़ी [मराठी की एक पुरानी लिपि] लिपियों की शैली बड़ी प्रवाहमयी

है और इस लिये लिखने में बहुत सुविधाजनक है। इस लिये अरबी लेखकों का स्वाभाविक रूप से यह उद्देश्य रहा कि उनकी कोई ऐसी नई लिपि बन सके जो प्रवाहमयी हो। 'बड़े अक्षर' स्थान भी अधिक घेरते हैं,—उन्हें हड्डियों पर लिखना था, जहां बड़ी मितव्यता की आवश्यकता थी। देवनागरी में, जहां अक्षर सयुक्त रूप में प्रयुक्त होते है, वहां संक्षेप के लिए उनका केवल महत्वपूर्ण अनिवार्य अंश ही रह जाता है [और शेष लुप्त हो जाता है]। उस समय की देवनागरी लिपि से—जो कि वहां प्रोटो-देवनागरी कहलाती थी उस से अरबी में वर्णों के केवल ये संक्षिप्त रूप ही चुन लिये गये। परन्तु बायें से दायें लिखे जाने पर [देवनागरी के] इन अक्षरों की हड्डियों पर ठीक ऐसी ही नकल नहीं हो सकती थी; क्योंकि साधारणत: हड्डियों का घुमाव बायें से दायें को होता है, इस लिये इन पर लिखना दायें से बायीं दिशा में ही सम्भव हो सकता था। यही प्रक्रिया चीनी लिपि में देखने को मिलती है और [दाये से बाये को लिखने की] यह विशेषता सैमेटिक नहीं है। बाये से दायीं दिशा के वर्णों को हड्डियों पर लिखने के लिये दाये से बायी दिशा में लिखे जा सकने योग्य रूपों में बदलना अनिवार्य था। साधारणत: ऐसा किया गया, प्रत्येक दशा में ऐसा नहीं हुआ—जैसा कि इस लेख में हम आगे पुष्ट करेंगे। संक्षेप में ऐसा कह सकते हैं कि हड्डियों पर लिखने के लिये एक स्थान बचाने वाली भाषा के रूप में प्रोटो-देवनागरी से अरबी लिपि का विकास हुआ और स्वभावत:—[१] वर्णों की दिशा दाये से बाये हो गई, [२] शीघ्र-लिपि [शौर्ट-हैण्ड] की तरह इस में भी वर्ण अनिवार्य रूप में संक्षिप्त हो गये, और परिणामस्वरूप [३] इसकी भी शैली मोड़ी लिपि की तरह प्रवाहमयी हो गई।

अरबी लिपि के विकास में समझने की सब से मुख्य बात यह है कि किस प्रकार बायें से दाये लिखे जाने वाले वर्ण दायें से बाये लिखे जाने वाले वर्णों में परिवर्तित हो गये। आजकल जिस रूप में देवनागरी लिपि है और परम्परा से आजकल जिस रूप में हमे अरबी लिपि मिली है—इस लेख में उनके उदाहरणों से इस प्रश्न को हल करने का प्रयत्न किया गया है। इस सम्बन्ध में प्राचीन शिलालेख आदि के प्रमाण सर्वांश में अनुपलब्ध हैं, इसलिए उन से बचने के लिए यह तरीका हमने जान बूझ कर अपनाया है। तुलनात्मक लिपि विकास या सुलिपि-कला [कैलिग्राफी] की उपयोगिता प्रदर्शित करने के लिये भी ऐसा करना सर्वतोऽधिक आवश्यक है। और इस सम्बन्ध में शिलालेख आदि दूसरी साक्षियों की सर्वथा उपेक्षा की जा सकती है।

देवनागरी का दीर्घ 'आ' जब किसी व्यञ्जन से सयुक्त होता है [जैसे—म्+आ=मा], तो इस का रूप एक ऊर्ध्वाधर [खड़ी] लकीर जैसा हो जाता है [म्+ा=मा] [जिसे देवनागरी में 'आ' की मात्रा कहते हैं]। यह 'आ' का मात्रा अरबी में बिना किसी परिवर्तन के उस के 'अलिफ़' के रूप में ले ली गई है। जैसे—अरबी में लिखे हुए 'अल्' में अलिफ का प्रयोग होता है।

देवनागरी में 'ण' वर्ण 'न' का ही एक रूप है [व्याकरण की दृष्टि से विशेष अक्षरों से परे 'न' को 'ण' कर दिया जाता है] 'न' को जब अनुस्वार के रूप में लिखना होता है तो इसका रूप अर्द्ध चन्द्राकार-बिन्दु [ँ] जैसा हो जाता है जैसे—['सखियाँ' या] 'ॐ' में। यह अर्द्ध-चन्द्र या 'बीच में बिन्दु वाले अंग्रेजी के U अक्षर जैसा रूप [ँ] देवनागरी से लेकर अरबी में 'नून' बना लिया गया है। भारतीय वर्ण [अर्द्ध-चन्द्र] बायें से दायें को लिखा

जाता था, पर इससे निकला हुआ अरबी का 'नून' दायें से बायें को लिख दिया जाता है। देवनागरी में भी कई बार (वर्ण की स्थिति के अनुसार अनुनासिक के रूप में) 'न' की ध्वनि को केवल एक बिन्दु से प्रकट किया जाता है जैसे-'रंग' में। अरबी जैसी स्थान का मितव्यय करने वाली लिपि में 'न' का यह बिन्दु जैसा संक्षिप्त रूप तो एक आदर्श (सबसे अच्छा) वर्ण होता (क्योंकि यह स्थान बहुत ही कम घेरता है), इसलिये वहां 'न' वर्ण इस बिन्दु के रूप में ही ले लिया गया, जैसे अरबी शब्द 'हना' में 'नून' का बिन्दु वाला रूप है। हम जानते हैं कि 'न' का ही एक रूप 'ण' है, इसलिये देवनागरी के 'न' के अनुरूप अरबी के नून (ں) का निकास देवनागरी के दूसरे प्रकार के 'ण' के संक्षिप्त रूप (U) से भी बहुत सम्भव है। इसमें केवल अरबी का विशेष बिन्दु और आगया है।

देवनागरी के 'य' वर्ण से अरबी के दो वर्ण निकले हैं—(१) बांये से दांये को, जिसे 'बड़ी ये' (या— याय मजहूल) कहते हैं जैसे अरबी शब्द 'आला' (बड़ा) में 'बड़ी ये' है। (२) दांये से बांये को, जिसे छोटी ये' (या— याय मारूफ) कहा जाता है। जैसे 'अली' में 'छोटी ये' होती है। अंग्रेजी का एक वर्ण है—'जैड' (Z), यह बांये से दांये को लिखा जाता है और उपर्युक्त दोनों वर्णों में से पहले वर्ण 'बड़ी ये' के साथ इसकी तुलना की जा सकती है, क्योंकि अरबी का यह वर्ण भी बांये से प्रारम्भ करके दायीं ओर को ही लिखा जाता है। इसके विपरीत अंग्रेजी का 'ऐस' (S) वर्ण दाये से बाये को लिखा जाता है और इस दृष्टि से यह अरबी के दूसरे वर्ण 'छोटी ये' के समान है क्योंकि यह भी दाये से बाये को ही लिखी जाती है। यहां हम देखते हैं कि साधारणतः बांये से दांये को लिखे जाने वाले वर्णों के रेखांश या प्रहार (= स्ट्रोक्स) सीधी रेखा के रूप में लिखे जाते हैं, जैसा कि 'जैड' (Z) में स्पष्ट है। लेकिन दांये से बांये को लिखते हुए वर्णों के इन प्रहारों में कुछ घुमाव या वक्रता भी आने लगती है जैसे 'ऐस' (S) में। इससे यह समझ में आने लगता है कि किस प्रकार देवनागरी के एक ही मूल वर्ण से अरबी में भिन्न २ आकार के दो वर्णों का विकास हो गया या किस प्रकार किसी लिपि में विकास सम्भव होता है।

अरबी का 'ऐन' वर्ण देवनागरी के 'अ' से निकला है, जिसकी ध्वनि का 'ऐन' की ध्वनि से बहुत सादृश्य है। सुलिपि-कला (= केलिग्राफी) की दृष्टि से 'अ' के दो भाग किये जा सकते है। एक तो इसका अनिवार्य विशेष तत्व 'उ' है और दूसरा भाग जो अंग्रेजी के 'टी' वर्ण (T) जैसा है, वह इसका साधारण अङ्ग है। सुलिपि कला की दृष्टि से हम इसका सूत्र (= फौर्मूला) इस प्रकार बना सकते हैं—अ = उ + T। "उ"— यह इसका सार भाग है, यदि इसके साथ इसका दर्पण वाला (= आदर्शीय) प्रतिबिम्ब (जो कि उलटा हो जायगा) रखा जाय तो दोनों का जो सम्मिलित रूप बनेगा [लगभग देवनागरी के छत्तीस अङ्क—३६—जैसा] उसमें इसका दायें हाथ वाला आदर्शीय रूप अरबी में 'ऐन' के रूप में ग्रहण कर लिया गया है। इसप्रकार अरबी का 'ऐन' देवनागरी के 'अ' का ही रूपान्तर है। जैसे ऐन का संक्षिप्त रूप अरबी के 'अली' शब्द में है। 'अ' का वही सार भाग 'उ', अपने आदर्शीय रूप में 'गुजराती ई' में भी मिलता है। वहां यह पहले ही देवनागरी की दांये से बांये वाली अपनी दिशा को छोड़ कर बाये से दाये वाले रूप में बदला जा चुका है। अरबी के 'गैन' की ध्वनि सैमेटिक भाषाओं में अपने विशेष प्रकार की है। देवनागरी में इसके निकटतम 'घ' वर्ण है। इस वर्ण का संयुक्त रूप 'ध्व' में दिखाई देता है। यहां यदि इसका सार भाग निकाल लिया जाय तो यह अरबी के 'ऐन' से मिलता है। पर 'ऐन' वर्ण पहले ही 'अ' से एक विशेष अर्थ के लिये निकाला जा चुका था, इसलिये उससे भेद करने के लिये 'आघेघ' जैसे 'ऐन' के बीच में एक बिन्दु लगा कर इसे अरबी का 'गैन' बना लिया गया। जैसे अरबी शब्द 'गनी' (= दौलतमन्द) में संक्षिप्त गैन का प्रयोग है। (अपूर्ण)

श्रद्धाञ्जलियां

जातीय निर्माता

"निःसन्देह राजनीतिज्ञों और योद्धाओं का किसी जाति के निर्माण करने में बड़ा हाथ होता है। परन्तु उनके नाम सहज में ही भूल जाते हैं, जब कि उन महात्माओं के नाम, जो किसी जाति के नवीन जीवन को बनाते हैं, आगामी नस्लों की स्मृति में सदा बने रहते हैं। उन्हीं में से स्वामी श्रद्धानन्द जी थे मैं परमात्मा से प्रार्थना करता हूँ कि उनका नाम ऐसे जातीय निर्माताओं के रूप में, जिन्होंने बड़े से बड़े बलिदान दिये, सदा स्मरण रहे। उनके बलिदानों में से सब से बड़ा बलिदान यह था कि उन्होंने हिन्दू-मुस्लिम एकता की वेदी पर अपने शरीर की भी आहुति दे दी।"

—पट्टाभि सीतारामैया, राज्यपाल, मध्यप्रदेश।

त्याग और धर्म

महेत्वेर उच्च शीर्षजे रवि उज्वल
किरण ज्लावने धरा करे झलमल
हरि जोति तारी स्मृति कुलगुरु
आनेर आलोते द्विप्त हिया दुर दुर।
श्रद्धानन्द पर्व परे श्रद्धार अञ्जलि
त्याग; धर्म गुणे राहे सदैव उज्वलि।

अजित कुमार हालदार।

सेवा और त्याग

"स्वामी श्रद्धानन्द जी के सेवामय जीवन को याद कर हम सब को सेवा और त्याग के लिए प्रेरणा मिलती रहेगी और इस महापुरुष के स्मरण के लिए जो कोई भी उत्सव किया जाये उसकी सफलता की कामना हम सब करते हैं।"

—राष्ट्रपति के निजू मन्त्री श्री वाल्मीकी चौधरी द्वारा।

-:*:-

अमर शहीद

"पूज्य प्रातः स्मरणीय श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी की पवित्र-पुण्यस्मृति राष्ट्र की बुझी हुई आत्मा में जीवन-ज्योति जाग्रत करे यही एकमात्र कामना है। वे मर कर भी अमर हैं। महान् पुरुषों का भौतिक शरीर भले ही तिरोहित हो जाय परन्तु उनका अमर आत्मा विश्व के लिए प्रकाशस्तम्भ बन जाता है।

'जिये तो जान लड़ाते रहे वतन के लिए,
मरे तो हो गये कुरबान संगठन के लिए।'

—हरिशंकर शर्मा, आगरा।

-:*:

साहसी एवं अग्रणी

"स्वामी श्रद्धानन्द जी साहसी थे, वीर थे, समयज्ञ थे, निभय थे इसी लिए जिस कार्य में भी वे पड़े अग्रेसर ही रहे। आर्य समाज में तो अग्रणी थे ही किन्तु काग्रेस-कार्य, अछूतोद्धार, हिन्दू सभा, शुद्ध सभा आदि में भी सब से आगे रहे। आज साहसी नेता के बिना आर्यसमाज मर रहा है। उसका कोई निर्भय मार्ग दर्शक नहीं रहा है, समस्त कुलवासियों को चाहिये कि वे स्वामी श्रद्धानन्द जी की श्रद्धा तथा उज्वल भावना को समझें—तभी गुरुकुल का कल्याण हो सकता है, तभी आर्य समाज का कल्याण हो सकता है।

—नरदेव शास्त्री वेदतीर्थ, सदस्य विधान सभा उत्तर प्रदेश।

—:*:—

धर्मयुद्ध की शिक्षा

"स्वतन्त्रता संग्राम के प्रधान सेना नायकों और नये भारत के निर्माताओं में स्वामी श्रद्धानन्द जी का स्थान ऊंचा है। उनकी स्मृति को सदा उज्वल बनाए रहना चाहिये और उससे स्वार्थ-त्याग, परहित-देशहित-चिन्तन और निर्भय धर्म युद्ध की शिक्षा लेनी चाहिये।

—भगवानदास, बनारस।

-:*:-

एक मनोवैज्ञानिक परीक्षण

श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति

मनुष्य के जीवन में ऐसे समय प्रायः आते रहते हैं, जब वह अपने को एक चौराहे पर खड़ा पाता है। उस समय उसके लिए ठीक मार्ग का निर्णय करना कठिन हो जाता है। यदि ठीक समय और ठीक स्थान पर कोई अच्छा मार्गदर्शक मिल गया तो मनुष्य उलझन से निकलकर ठीक रास्ते पर पड़ जाता है। अन्यथा या तो उलटे रास्ते पर चल पड़ता है अथवा दुविधा में फंसकर जीवन के अमूल्य अवसर को खो देता है। ठीक स्थान और ठीक समय पर सच्चा मार्गदर्शक मिल जाय, यह अच्छे भाग्यों से होता है। इसी से बड़े से बड़े पुरुषार्थवादी भी अन्त में प्रारब्धवादी होते देखे गये हैं।

अब मैं अपने जीवन की जिस घटना का इतिहास सुनाने लगा हूँ वह ऐसी ही थी। हम दोनों भाई घटनाचक्र के वश भूत होकर उलझन सी छ ईस्वी के मध्य में जीवन के चौराहे पर पहुँच गए थे। वह मानसिक उलझन क्या था और उससे हमारा कैसे उद्धार हुआ यह पाठकों को निम्नलिखित घटना से ज्ञात होगा।

उन दिनों हम लोग संस्कृत ही पढ़ा करते थे व्याकरण, साहित्य दर्शन सभी विषयों में हमारा योग्यता अच्छी मानी जाने लगी थी। मुझे स्मरण है कि एक बार आर्यसमाज के प्रसिद्ध विद्वान प० आर्यमुनि जी गुरुकुल देखने के लिए आए। हम लोग उस समय गङ्गा पर नहाने की तैयारी कर रहे थे प० आर्यमुनि जी प्रधान जी के साथ हम लोगों के पास आए और संस्कृत में बातचीत करने लगे। यदि भूलता नहीं तो प० आर्यमुनि जी ने गंगा की ओर देख कर निम्नलिखित वाक्य कहा था— शुद्धं अम्बु गच्छति।" इस वाक्य का सुनना था कि हम लोग बे मतलब उनसे उलझ पडे। व्याकरण का झगड़ा छेड कर हमने उन्हें बहुत तङ्ग किया। पंडित जी दार्शनिक थे, व्याकरण उन्हें उपस्थित नहीं था। हमारे बचपन पर वह हंसते रहे और अन्त में साधु साधु कहते हुए प्रधान जी के साथ चले गए। यह हमारी उस समय की मनोवृत्ति का एक अच्छा नमूना था कि हमने अपने आपको विजयी समझा और बहुत प्रसन्न हुए।

इसी बीच में काशी के प्रसिद्ध विद्वान गुरुवर प० काशीनाथ जी गुरुकुल में अध्यापक के तौर पर आ गए। प० काशीनाथ जी पुराने ढंग के पाण्डित्य का एक बढ़िया नमूना थे। उनका वेश यह था—धोती और बन्डी के अतिरिक्त चादर ओढ़ते थे। सर्दियों में चादर के स्थान पर लिहाफ ओढ़ लेते थे, अधिक गर्मियां होने पर बन्डी उतार लेते थे। उनके स्टाक में कोई चौथा कपड़ा नहीं रहता था। धोबी को वह कोई कपड़ा धुलने को नहीं देते थे। और स्वयं भी साबुन का प्रयोग नहीं करते थे। नहाकर पीली धोती निचोड़ देते थे बस वस्त्रशुद्धि का उनका इतना ही कार्यक्रम था। इस कारण गुरु जी के कपड़े सदा मैले ही दिखाई दिया करते थे।

पुराने पंडितों को पान, तम्बाकू, सूंघनी आदि में से किसी न किसी चीज की आदत हुआ करती थी। गुरु जी को सूंघनी की आदत थी वैसे तो जाग्रत अवस्था में भी थोड़ी थोड़ी देर में सूंघते रहना उनके लिए आवश्यक था परन्तु विशेष रूप से जब वह पढ़ाने के लिए बैठते थे, तब बहुत बार सूंघनी चुटकी में लेकर नाक के मार्ग से मस्तक तक चढ़ाना अनिवार्य सा हो जाता था। हम लोगों ने पुस्तक खोली और गुरु जी ने सूंघनी चुटकी में ली, यह जानकर आज कल के गुरुओं और विद्यार्थियों को आश्चर्य होगा कि गुरुजी को पढ़ाते समय कोई पुस्तक खोलने की आवश्यकता नहीं होती थी। व्याकरण, नवीन तथा प्राचीन दर्शन, अलंकार, ज्योतिष, निरुक्त आदि किसी भी विषय के कठिन से कठिन ग्रन्थ को वह बिना पुस्तक देखे ही पढ़ा सकते थे। हम लोग पाठ पढ़ते जाते और वह अपनी पुरबिया भाषा में समझाते जाते।

शास्त्र की कोई ऐसी गांठ नहीं थी, जिसे उनकी प्रतिभा खोल नहीं सकती थी। शास्त्रों का कोई ऐसा भवर नहीं था जिसे उनकी विद्वत्ता पार नहीं कर सकती थी। कोई ग्रन्थ खोलिए, गुरु जी को वह उपस्थित मिलता था। उन धूमिल वस्त्रों में उस अगाध विद्वत्ता को देख सचमुच आश्चर्य होता था।

इसी सिलसिले में एक मनोरंजक घटना याद आ गई है। उसे भी लिखे देता हूं। एक साल चौमासे में गङ्गा का जल बहुत बढ़ गया। गुरुकुल के पुराने यात्रियों को मालूम है कि बरसात में हरिद्वार से गुरुकुल तक की यात्रा कनस्तरों के बन्धे हुए तमेड़ पर हुआ करती थी। वह किश्ती कितनी मनोरञ्जक और कितनी भयानक है, यह वही समझ सकते हैं जिन्होंने चौमासे में उमड़ती हुई गंगा की धारा को तमेड़ से पार किया हो। एक क्षण में यात्री अपने को गंगा की चोट पर, और दूसरे क्षण में गंगा के पाताल में पाता था। साल में दो चार दिन ऐसे भी आते हैं, जब तमेड़ चलाने वाले गंगा का सामना करने से इन्कार कर देते हैं। उस साल ऐसे ही चार दिन आ गये, जिनमें गुरुकुल का हरिद्वार से पूरी तरह सम्बन्ध विच्छेद हो गया। इधर गुरुजी की डिबिया में सूंघनी समाप्त हो गई। प्रातःकाल के समय जब हम लोग गुरुजी के सामने पढ़ने के लिए बैठे तो बहुत ही करुणाजनक दृश्य था। वे कभी विद्यार्थियों की तरफ देखते हैं और कभी गंगा के उस घाट की ओर जहां परले पार से आकर तमेड़ लगती थी। सूंघनी के बिना विद्वत्ता के उस अथाह सागर के मस्तिष्क और वाणी दोनों सब था मौन थे। तीन दिन इसी तरह बीत गये। कोई पाठ न हुआ। चौथे दिन गुरु और शिष्य उसी प्रकार बैठ कर समय व्यतीत कर रहे थे कि इतने में गंगा में तमेड़ दिखाई दी। गुरु जी ने इशारा करके एक ब्रह्मचारी को भगाया जिसने तमेड़ के किनारे पर लगते ही हरिद्वार से आये हुए सामान में से सूंघनी की पुड़िया निकाल ली, और गुरु जी के हाथ में दे दी। उस समय गुरुजी के चेहरे की प्रसन्नता देखने योग्य थी, मानों पृथ्वी का साम्राज्य मिल गया हो। गुरु जी ने कई चुटकियां इकट्ठी नाक में चढ़ा लीं जिससे एक बार तो आंख और नाक से खून पानी बह निकला परन्तु चार पांच मिनट में प्रतिभा के बन्द कपाट खुल गये और शास्त्र का अनवरत प्रवाह बह निकला।

गुरु जी की एक बात और सुनाकर आगे चलता हूं। लम्बी छुट्टियों में गुरुजी बलिया जाने के लिए तैयार हुये। यात्रा के लिये एक खुरजी तैयार की गई जिसमें एक ओर कुछ कपड़े, और दूसरी ओर सत्तू चने आदि बन्धे हुए थे। सफर में गुरुजी न जल पीते थे, न खाना खाते थे। गुरुकुल में भी केवल अपने हाथ का बना खाना ही खाते थे। खुरजी को कन्धे पर डालकर गुरुजी जब तीसरे दरजे के डिब्बे मे प्रविष्ट हुए और सीट के नीचे की जगह में बैठने लगे तो हम लोगों ने जो उन्हें स्टेशन पर छोड़ने गए थे, सीट पर जगह खाली करा कर गुरुजी से निवेदन किया—'महाराज आप नीचे क्यों बैठते हैं सीट पर बैठिये, जगह तो है।" गुरुजी ने बहुत ही भोले ढंग पर उत्तर दिया—'अरे कोई उठाई देई है।" उस समय तो हम लोगों ने यह विश्वास दिलाकर कि "आपको रास्ते में कोई नहीं उठाएगा" गुरुजी को सीट पर बिठा दिया था, आगे कैसे बीती यह मालूम नहीं।

ऐसे प्रकाण्ड विद्वान् के उस सादा जीवन का हम लोगों पर बहुत गहरा असर हुआ। मस्तक पर मध्यकालीन संस्कृत का अधिकार बढ़ने लगा। शेखर और रत्नावली ने काशिका और प्रशस्तपाद को मैदान से भगा दिया। यह हमारी ओछी बुद्धि और अल्पविद्या का ही परिणाम था कि गुरुजी के आने के दो तीन वर्ष बाद हम लोगों में यह भाव पैदा हो गया कि आर्यसमाज के पास और कुछ भी हो, पाण्डित्य का

सर्वथा अभाव है। हम लोग ज्ञानलवदुर्विदग्धता के अच्छे खासे नमूने बन गये।

(ख)

एक दिन रात्रि के भोजन के पश्चात् हम दोनों भाइयों ने प्रधान जी (पिता जी) से प्रार्थना की कि हम अकेले में उनसे कुछ बातें करना चाहते हैं, गुरुकुलीय जीवन में शायद यह पहला अवसर था, जब हमने पिताजी से अलग बातचीत करने का समय मांगा हो, अन्यथा वह दोनों को सदा अन्य ब्रह्मचारियों के समान भाव से ही देखते रहे। हमारी प्रार्थना से पिता जी को आश्चर्य हुआ, तो भी उन्होंने हमारी प्रार्थना स्वीकार करली। और हम दोनों को साथ लेकर उसी समय गुरुकुल वाटिका में चले गए। वहां टहलते टहलते भाई जी ने पिता जी से अपने मन का भाव कहा। भाव यह था कि हम दोनों गुरुकुल की शिक्षा से सन्तुष्ट नहीं हैं। इस शिक्षा से हम पण्डित नहीं बन सकेंगे। पण्डित बनने के लिए काशी में शिक्षा पाना आवश्यक है। हमें पण्डित शिवकुमार मिश्र, प० जयदेव मिश्र और श्री भगवताचार्य जैसे पण्डितों से शिक्षा पाने का अवसर मिलेगा। आप हमें गुरुकुल से उठाकर बनारस भेज दीजिए।

हमारे इस प्रस्ताव से पिताजी को जो मानसिक धक्का पहुँचा होगा, उसका अनुमान लगा कर अब भी मेरा दिल कांप उठता है। जिस व्यक्ति ने गुरुकुल शिक्षा की स्थापना के लिए सर्वस्व लगा दिया हो, उसके लड़के ही जब निष्फलता और निराशा का सन्देश लेकर आए तो उस व्यक्ति के हृदय पर आघात होना स्वाभाविक ही था, पिता जी हमारा प्रस्ताव सुन कर चुप हो गए। बहुत देर तक तीनों मौन मुद्रा में घूमते रहे। यह अनुभव करके कि हमारे शब्दों ने पिताजी को बहुत दुःखी किया है, हम दोनों स्तब्ध से हो गए। पिता जी के मन में क्या विचार उठते रहे होंगे, इसका अनुमान ही लगाया जा सकता है।

कुछ देर तक चुपचाप टहलने के पश्चात् पिता जी ने बड़े शान्त भाव से कहा, "मैं तुम्हारी बातों का उत्तर कल दूंगा "

दूसरे रोज हम बड़ी उत्सुकता से उत्तर की प्रतीक्षा करने लगे। तरह तरह के विकल्प मन में उठ रहे थे। कभी सोचते कि पिताजी बनारस भेज देंगे, न भेजना होता तो उसी समय इन्कार कर देते। फिर विचार उठता कि भेजना होता तो उसी समय मान भी तो सकते थे अवश्य इन्कार करेंगे। इसी तरह संकल्प विकल्प करते सायंकाल का समय आ गया। सायंकाल पढ़ाई से छुट्टी होने पर कमरे से बाहर निकले तो प्रधान जी का चपरासी हाथ में एक कागज लेकर आता हुआ दिखाई दिया। उस कागज में निम्न लिखित आशय की आज्ञा लिखी हुई थी, "भोजन से निवृत्त होकर दो बड़ी श्रेणियों के सब ब्रह्मचारी मुख्याधिष्ठाता जी के निवासस्थान पर एकत्र हों।" इस आज्ञा से हम दोनों भाइयों की दुविधा और भी बढ़ गई। क्या हमारे प्रस्ताव का उत्तर सब के सामने दिया जायगा?

भोजन के उपरान्त ऊपर की श्रेणियों के सब ब्रह्मचारी प्रधान जी के स्थान पर इकट्ठे हुए। मैं शायद इन संस्मरणों में यह बतलाना भूल गया हूं कि हम दोनों भाई एक ही श्रेणी में थे, और वह श्रेणी गुरुकुल में सबसे बड़ी थी। हमारे साथ एक और साथी भी शिक्षा पाते थे, जिनका नाम जयचन्द्र था। वह स्नातक बनने से पूर्व ही गुरुकुल छोड़कर चले गए थे। अस्तु, हम सब प्रधान जी के स्थान पर एकत्र हुए। प्रधान जी ने बड़े प्रसन्न भाव से ब्रह्मचारियों को यह समाचार सुनाया कि दोनों बड़ी श्रेणियों को देहरादून यात्रा कराने का निश्चय किया गया है इतना समाचार मात्र हम पिंजरे के पक्षियों को फड़का देने के लिए पर्याप्त था। हमने अभी हरिद्वार भी अच्छी तरह न देखा था। देहरादून की यात्रा होगी यह जानकर हम लोग बहुत ही प्रसन्न हुए।

श्रद्धाञ्जलियां

मार्ग-दर्शक चरित्र

"श्री पुण्यश्लोक स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज का जीवन चरित्र ही अखिल भारतवर्ष को मार्गदर्शन कराने वाला है। उन द्वारा स्थापित गुरुकुल से उनका अनुकरण करने वाले अनेक छात्र निकलें ऐसी परमेश्वर से मेरी सविनय प्रार्थना है।

मा० वि० किबे, सरस्वती निकेतन, इन्दौर।

निष्ठा और तेजस्विता

"स्वामी जी का जीवन निष्ठा और तेजस्विता क जीवन्त उदाहरण था। उनके बलिदान से हमारे देश को जो चुनौती मिली थी वह आज भी वर्तमान है। हमें अपने ऋषि ऋण को चुकाना आज भी बाकी है। आपका आयोजन इसी संकल्प की ज्योति जगाए यही हमारी आन्तरिक कामना है।'

मोहनलाल वाजपेयी, अध्यक्ष हिन्दी भवन,
शान्ति निकेतन।

पवित्र आयोजन

"मेरी कामना है कि श्रद्धानन्द-बलिदान-पर्व का यह पवित्र आयोजन राष्ट्रीय जीवन में त्याग और बलिदान की वह प्रेरणा भरदे जिसकी साकार और सजीव प्रतिमा स्वय स्वामी जी महाराज थे। मैं उनके प्रति और गुरुकुल के प्रति श्रद्धाञ्जलि अर्पित करता हू'

श्री कमलापति त्रिपाठी, मन्त्री,
सूचना व सिंचाई विभ ग, उत्तर प्रदेश।

प्रधान जी ने अत्यन्त आकर्षक शब्दों में यात्रा का कार्यक्रम हमारे सामने रक्खा। सायकाल के समय चलेंगे। रात को मायापुर वाटिका में ठहरेंगे। सुबह स्टेशन पर पहुँचकर तुम लोगों को यह समझाऊगा कि इजन से रेल कैसे चलती है। देहरादून पहुँचकर जगलात का कालिज, ओब्जरवेटरी, आदि सस्थाए देखने को मिलेगी। फिर सहस्त्रधारा चलेंगे, इत्यादि इतनी नई चीजें इकट्ठी देखने की आशा उत्पन्न करने के अनन्तर प्रधान जी ने हमारे जिम्मे कई काम लगा दिए। कल कागज मगवा दिए जाएगे। तुम लोग यात्रा के नोट लेने के लिए स्वय जिल्द वाली डायरियां तैयार करलो। सब मैले कपड़ों को धो डालो। चार दिन के लिए खैर की दातुनें इकट्ठी करलो। यात्रा के लिए भडारी, सहायक भडारी उसी समय नियत कर दिए गए। इस प्रकार यात्रा और यात्रा की तैयारी का पूरा कार्यक्रम हमारे दिल और दिमाग में भरकर प्रधान जी ने हमें सोने के लिए आश्रम में भेज दिया।

मेरे अध्ययन और निजी अनुभव में जितने मनोवैज्ञानिक परीक्षण आए हैं, उनमें शायद ही कोई इतना सफल हुआ हो, जितना पिताजी का यह मनोरजक परीक्षण हुआ, मै इसे उनकी नेतृत्व शक्ति का सबसे बड़ा प्रबल प्रमाण मानता हूँ। मनुष्यों का नेता वही हो सकता है, जो उनके मनों को अपनी इच्छानुसार साचे में ढाल सके और ढाल भी सके ऐसे ढग पर कि अनुयायियों को यह भी मालूम न हो कि उन्हें कुछ का कुछ बना दिया गया है। देहरादून की यात्रा के प्रस्ताव ने हम दोनों के मन में से बनारस जाने की इच्छा के खडहरों तक को निकाल कर बाहर फेंक दिया। रात को जब हम सोने के लिए आश्रम में पहुँचे तो हमारे हृदयों में से निराशा विदा ले चुकी थी और उत्साह भरा हुआ था। हमारे कल रात के प्रस्ताव का पिताजी की ओर से यह क्रियात्मक उत्तर था।

देहरादून की यात्रा हम दोनों भाइयों के जीवन में एक पड़ाव की हैसियत रखती थी। उस यात्रा का ब्रह्मचारियों के मन और हृदय पर बहुत गहरा असर हुआ, बाहर की दुनिया से अलग रहने के कारण हमारे मन की स्लेट लगभग साफ थी। उस पर बाह्य ससार के जो पहले अक्षर लिखे गए, वह बहुत ही स्पष्ट और गहरे थे। हम लोग केवल सस्कृत ज्ञान के श्रद्धालु रूप में यात्रा के लिए चले थे। जब वापिस आए तो विज्ञान कला आदि की जिज्ञासा से पूर्ण थे। यह वह मनोवैज्ञानिक परीक्षण था जो पिताजी ने ब्रह्मचारियों के मन पर किया था।

हमारे सरदार

श्री सत्यव्रत 'सुगम'

"यद्यपि मैं उस लोक में पहुँचने को आतुर हूँ, जहा महात्मा गाधी, कस्तूरबा और महादेव देसाई गये हैं, तथापि इस दुनिया में कुछ वर्ष और रहना चाहता हूँ, मैं इस ससार में उनकी इच्छा से उनका अपूर्व कार्य पूरा करने के लिये जी रहा हूँ।" ये शब्द अपनी ७५ वीं वर्षगाठ पर उस सरदार पटेल ने कहे थे, जिसके नाम के आगे आज स्वर्गीय शब्द लगाते हुए हृदय विकम्पित हो जाता है। उस समय कौन जानता था कि वह आतुर आत्मा डेढ़ मास बाद ही अपनी कामना पूर्ण करने को चल देगी।

परिस्थिती श्रेष्ठ है या पुरुष यह सवाल इग्लैण्ड के प्रसिद्ध मनीषी कार्लाइल ने उठाया था, परिस्थिति पुरुष को राष्ट्र के रंग मच पर लाती है या पुरुष परिस्थिता के ऊपर कब्जा करके उसको चाहे जैसा कार्यान्वित करता है। यह ऐसी समस्या है जिसका ठीक तरह से हल करना कठिन है परन्तु सरदार पटेल ने यह स्पष्ट दिखा दिया कि पुरुष परिस्थितियों का निर्माण करता है।

३१ अक्तूबर १८७५ को गुजरात प्रान्त के एक छोटे से गाव में एक निर्धन पहरेदार परिवार में सरदार पटेल ने जन्म लिया था। बचपन में उसे मखमली बिछौने और सोने की चम्मच में खाने का सुख न मिला था, होश सम्भालने के बाद उसे स्वय ही अपना पथ-निर्माण करना पड़ा। तब कौन कह सकता था कि यह छोटा सा बालक एक दिन ३२ करोड़ भारतीयों का भाग्य विधाता बनेगा। नदिमाद हाई स्कूल में प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त करके उन्होंने प्लीडर की परीक्षा पास की और बाद को लंदन के मिडिल टेम्पल में ला का अध्ययन किया और सन् १९१३ में जिन्दगी की ३८ गर्मियों से टक्कर लेने के बाद सरदार पटेल को बैरिस्टरी का हक़ मिला। हक़ क्या मिला उसे भी लड़कर प्राप्त किया गया। कल्पना के कागज पर सपनों की कविता उन्होंने नहीं लिखी—बौद्धिक उड़ान की इन्द्रधनुषी बाहर में उनकी शक्ति चेतना नहीं उलझी।

सरदार पटेल का सार्वजनिक जीवन १९१६ में प्रारम्भ हुआ—म्युनिस्पैलिटी के अध्यक्ष बने; वर्षों तक सम्मान एव सतर्कता के साथ उन्होंने इस पद को सुशोभित किया—इसके बाद कांग्रेस के स्वागताध्यक्ष के रूप में, बारदोली आन्दोलन में, गुजरात में १९२७ के बाढ़ पीड़ितों की सहायता में तथा १९३४ में बिहार के भूकम्प पीड़ितों की सहायता में जो कार्य किया वह उनके यश को सदा अमर रखेगा। आज कांग्रेस में जो थोड़ा बहुत संगठन है वह सब सरदार पटेल के मस्तिष्क का ही परिणाम था यद्यपि आज उनके न रहने पर यह संगठन लड़खड़ाता सा प्रतीत हो रहा है। वे कठोर अनुशासन वादी थे यही कारण है कि दुनिया आज उन्हें 'सरदार' तथा 'लौह पुरुष' के नाम से सम्बोधित करती है।

सचमुच सरदार बर्फ से ढके हुए ज्वालामुखी पहाड़ थे, गुजरात के सिंह तथा भारत के सरदार थे। उनकी स्पष्टवादिता तथा निर्भिकता निम्न वाक्यों से प्रदर्शित होती है जो कि उन्होंने एक किसान सभा में बोलते हुए कहे थे—"अरे! साप को क्या अपनी काचली उतारने में कुछ कष्ट होता है या कोई मेहनत करनी पड़ती है इसी तरह हम भी एक दिन अंग्रेज़ी शासन की काचली को उतार फेकेंगे"। इन शब्दों में कितना साहस और स्वाभिमान टपकता है।

१९३५ में वे कांग्रेस पार्लामेन्टरी बोर्ड के अध्यक्ष बनाये गये और उसी समय देश के चुनावों में कांग्रेस की महान् विजय की उन्होंने योजना बनाई। बाद को १९३७ में कांग्रेस ने ११ प्रांतों में मन्त्री पद संभाला। उसका गम्भीर निर्णय भी सरदार ने ही किया था—हरीपुरा कांग्रेस की सफलता में भी सरदार का ही एक

बड़ा भाग था। द्वितीय महायुद्ध काल में सरदार को १६४० तथा १६४२ में दो बार जेल भेजा गया—पहली बार तो बीमारी के कारण शीघ्र ही छोड़ दिया दूसरी बार तीन वर्ष तक अहमदनगर किले में रहे और १ जून १६४५ को मुक्त हुए। लार्ड वेवल द्वारा आयोजित शिमला सम्मेलन में भी सरदार ने शानदार पार्ट अदा किया। अगले वर्ष ही केबिनट मिशन वार्तालाप में भी सरदार पटेल काग्रेस के भाग्य निर्णयकों में से एक थे। जिस समय अन्तरिम मण्डल बना उन्होंने गृह, सूचना,, तथा ब्राडकास्टिंग विभागों का कार्य सभाला १६४७ में रियासती मन्त्रालय भी उनके हाथ में आ गया।

स्वतन्त्रता के साथ साथ देश के सामने अनेक विकट समस्याएं अपना विकराल मुह फाड़े खड़ी थीं। पुराना साम्राज्य शाही शासन यत्र-तत्र लड़खड़ा रहा था।, देश का विभाजन हो चुका था, साम्प्रदायिकता चारों ओर आग उगल रही थी, देश के शरीर में वल्मक के छिद्रों की भांति लगभग ६०० रियासतें पुन' स्वतन्त्र और स्वेच्छाचारी होने का स्वप्न ले रही थीं ऐसी सङ्कट पूर्ण स्थिति में यह सरदार की दृढ़ता, धैर्य और साहस ही था जिसने कि एक एक करके सारी परिस्थितियों पर काबू पा लिया। भारत माता को ६०० रियासतों की मणिमाला पहिनाने में सरदार पटेल का हाथ न कांपा और न तनिक झिझका ही था।

बिस्मार्क के विषय में यह कहा जाता है कि उसने जर्मनी की प्रतिष्ठा को कम करके अपना महत्त्व बढ़ाया।, किन्तु सरदार पटेल के विषय में यह कहना ठीक होगा कि उन्होंने स्वयं पृष्ठ भूमि में रह कर भारत को प्रतिष्ठा प्रदान की। स्वतन्त्र भारत के उप प्रधान-मन्त्र और स्वतन्त्र प्रहरी की भूमिका में सरदार ने सब से शानदार परिच्छेद हैदराबाद पुलिस कारवाई का लिखा। राष्ट्र ने उसे सरदार नाम दिया, न महात्मा, न सन्त, न देश सेवक और न देश रत्न।

सरदार को शिल्पी कहें या राजनीतिज्ञ, सिपाही कहें या राजनीतिक काला का बनजारा, लौह पुरुष कहें कि उदार कौटिल्य कोमल कलाकार। जो कुछ भी हो, एक बड़ा व्यवहार कुशल मल्लाह और राष्ट्रीय शक्ति का ज्योति-स्तम्भ भारत से खो दिया गया यद्यपि आज उनका भौतिक शरीर हमारे इन चर्म चक्षुओं के के सामने नहीं है परन्तु फिर भी यावच्चन्द्रदिवाकरौ हमारे सरदार का नाम अमर रहेगा और नव भारत के इतिहास में स्वर्णाक्षरों म लिखा जायेगा।

श्रद्धाञ्जलियां

स्फूर्तिदायक चरित्र

स्वामी जी सचमुच अपना "श्रद्धानन्द" यह नाम सार्थ करने वाले आदर्श पुरुष थे। जिस कार्य का या तत्वप्रणाली को आपने स्वीकार किया उसके लिए वे आमरण कर्मयोग का आचार करते ही रहे। आधुनिक युग के वे महान् ऋषि थे। उनके चरित्र से अनेक लोगों को स्फूर्ति प्राप्त हुई है। मैं भी उसमें एक हूं। बलिदान से अपना कार्य आपने और भी उज्वल बना दिया।

डॉ० रा० नरवणे
उपमन्त्री, मद्यनिषेध विभाग, बम्बई।

उज्वल चरित्र

"स्वर्गीय स्वामी श्रद्धानन्द जी की तपस्या, स्वार्थ-त्याग, समाज सेवा ये सब बहुत ही उज्वल है। जब जब उनकी स्मृति जाग्रत होती है तब तब उनकी धीरोदात्त, भव्य और गम्भीर मुद्रा मेरी आंखों के सामने उपस्थित होती है। इस शुभ अवसर पर मैं उनके प्रति स्मृति रूप में अपनी श्रद्धांजलि विनीत भाव से अर्पित करता हूँ। जिस देश में ऐसे महानुभाव जन्म लेते हैं उन देशों को कभी भी अवनति नहीं आ सकती।"

सवित्रा वासुदेव मावलंकर।

आरम्भिक भारतीय पुरातत्व की कुछ समस्यायें

श्री यज्ञदत्त शर्मा एम० ए०, डा० फिल०

अतीत संस्कृति की दृष्टि से पाकिस्तान भारत का ही अंग है। इस संयुक्त भारत पाकिस्तान देश में पाषाण युग के पश्चात् आने वाली प्राथमिक सभ्यता के अवशेष विशेषकर पश्चिम में मिलते हैं। इन में सर्वप्रथम अवशेष कृषि से निर्वाह करने वाली और साधारण गावों में रहने वाली जातियों के हैं। प्राय इसी आरम्भिक काल की एक विकसित सभ्यता के महत्वपूर्ण अवशेष मोहेंजोदड़ो (जि० लाड़काना) और हड़प्पा (ज़ि० मिंटगुमरी) में प्रचुर मात्रा में मिलते हैं। इन प्रदेशों में पलने फूलने वाली इस अतीत की सभ्यता को सिन्धु घाटी की सभ्यता कहा जाता है, किन्तु इसका अधिक शुद्ध संज्ञा हड़प्पा संस्कृति है। इसकी कई विशेषतायें उल्लेखनीय हैं। इसमें पाषाण और ताम्र व कांसा दोनों का प्रयोग पाया जाता है। इसकी एक मुख्य विशेषता यह है कि नगरों में मकानों तथा सड़कों का योजना बद्ध रूप से निर्माण है। ऐतिहासिक काल में भारतवर्ष में जितने नगर बसे उनमें जयपुर और आधुनिक नई दिल्ली के अतिरिक्त कहीं भी शहर को योजना पूर्वक नहीं बसाया गया। मोहेंजोदड़ो में सड़क आवश्यकतानुसार चौड़ी और सीधी हैं तथा एक दूसरे को समकोण पर काटती हैं। सड़कों के दोनों ओर मकान व्यवस्थित रूप से बने हुए हैं।

यहां नालियों द्वारा गन्दे पानी को निकालने का सुन्दर प्रबन्ध है। घर में से गन्दा पानी छोटी २ नालियों द्वारा गली अथवा सड़क की बड़ी नालियों में जाता है और ये नालियां नगर का सारा मल और कचरा शहर से बाहर ले जाती हैं। मोहेंजोदड़ो में एक विशाल स्नानागार भी मिला है। यह नहाने तथा संभवत धार्मिक कृत्यों के लिए आवश्यक शुद्धि के लिए प्रयुक्त होता था। खाद्य अन्नों की सुरक्षा के लिए हड़प्पा में बड़े २ कोठे मिले हैं और अन्न को साफ करने अथवा पीसने के लिए चक्कार ईंटों से बनी वेदिकायें भी मिली हैं। यहां के निवासी पत्थर की बनी मुद्रायें प्रचुर मात्रा में छोड़ गये हैं। इन मुद्राओं पर चित्रलिपि में कुछ नाम अंकित हैं और पशुओं की आकृतियां अथवा अन्य दृश्य हैं। किन्तु यह चित्रलिपि सर्वसम्मत रूप से अभी तक पढ़ी नहीं जा सकी है। इन मुद्राओं के आधार पर इन निवासियों के धर्म के विषय में हम सर्वथा सूचना विहीन नहीं।

हड़प्पा सभ्यता की शासन प्रणाली के सम्बन्ध में पहले यह समझा जाता था कि वहां सब नागरिक अपना कर्तव्य पालन करते हुए इतने धर्माचरण से



डॉक्टर शर्मा बहादराबाद की खुदाई से निकले प्रागैतिहासिक काल के एक हथियार को दिखा रहे हैं।

जीवन व्यतीत करते थे कि किसी प्रकार के शासन तन्त्र की विशेष आवश्यकता ही नहीं थी। शत्रुओं से नगर को कोई भय ही नहीं था। वह सतयुग का समय था। परन्तु डा० ह्वीलर द्वारा हड़प्पा में १९४६ में कराई गई खुदाइयों से अब यह स्पष्ट हो गया है कि वहां नियमित रूप से राजतन्त्र प्रणाली प्रचलित थी। राजा शासन भी करता था और प्रजा का मुख्य पुरोहित अथवा धार्मिक नेता भी था। इस पिछली खुदाई में मिले दुर्ग के आकार का आधार कच्ची मिट्टी का है और इसकी चौड़ाई नीचे लगभग ६० फीट है। पीछे के युग में पक्की ईंटों की दीवारों से इसे सुदृढ़ कर दिया गया था। हड़प्पा में और्ध्वदैहिक विधि दोनों प्रकार की मिलती है, प्रारम्भिक काल में शवों को भूमि में गाड़ा जाता था परन्तु पीछे के काल में उन्हें जला कर उनकी राख, अस्थि इत्यादि को घड़े में बन्द कर भूमि में गाड़ दिया जाता था।

आरम्भिक पुरातत्त्व का अन्धयुग

हड़प्पा संस्कृति का काल स्थूल रूप से ईसा से पूर्व तीसरी सहस्राब्दी है। यह सभ्यता पांच हजार वर्ष पुरानी है और सम्भवतः ईसा पूर्व द्वितीय सहस्राब्दी तक जीवित रही। किन्तु इस सभ्यता के बाद ईसा से ५-४ शती पूर्व के प्रायः बौद्ध युग के पुरातत्त्वीय अवशेष प्राप्त होते हैं। इन अवशेषों से सम्बद्ध मृत्पात्रों में एक प्रकार के काले चमकीले पात्र इस युग की विशेषता हैं। तक्षशिला में ऊपर पाई गई एक आहत मुद्रा के द्वारा इन पात्रों के समय का स्थूल रूप से निर्णय हो सका है। इसके बाद हमें अन्य युगों के अवशेष भी प्रायः शृङ्खलाबद्ध क्रम में मिल जाते हैं। किन्तु अभी तक आरम्भिक युग में हड़प्पा के बाद से ई० पू० ५-४ शती तक बीच के डेढ़-दो हजार वर्षों पर अन्धकार का आवरण पड़ा रहा है। यह आरम्भिक पुरातत्त्व की एक प्रधान समस्या थी और इसे पुरातत्त्व का रिक्त अथवा अन्धयुग कहा जाता था। पुरातत्त्वज्ञ इस बात का प्रयत्न कर रहे थे कि इस अन्धयुग पर कुछ प्रकाश पड़े, बीच की लुप्त शृङ्खलाओं का तथा ऐतिहासिक विकास के तारतम्य का पूरा ज्ञान प्राप्त हो।

हस्तिनापुर की खुदाई का महत्त्व

पिछले दो वर्षों में हस्तिनापुर में हुई खुदाई से इस पर काफी प्रकाश पड़ा है और अब हमें पुरातत्त्वीय ऐतिहासिक विकास के तारतम्य का बहुत कुछ ज्ञान हो गया है। महाभारत के अनुसार हस्तिनापुर कुरुओं की राजधानी थी। यहां की खुदाई में सब से ऊपर के स्तर में ११-१४ वीं शती के मुस्लिम काल के अवशेष मिले हैं जिनमें बलबन का एक सिक्का भी है जिसका राज्यकाल सन् १२६६-८१ है। इससे पूर्व पर्याप्त समय तक बस्ती उजाड़ रही। किन्तु इसके पूर्व के स्तरों में ईसा पूर्व दूसरी शती से लेकर ईसा पश्चात् तृतीय शती के शुङ्ग और कुषाण काल के अवशेष मिले हैं। इस में शुङ्ग कालीन मिट्टी की मूर्तियां और खिलौने, ईसा पूर्व दूसरी पहली शती का एक मित्रवंश का सिक्का, ईसा पश्चात् प्रथम शती का एक यौधेय सिक्का, और कुषाण राजा वासुदेव का द्वितीय शती का एक सिक्का उल्लेखनीय है। इनसे नीचे ईसा की पांचवीं छठी शती से लेकर तृतीय शती तक के काले चमकीले मिट्टी के बरतन पाये गये हैं जो लगभग ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी से लेकर अष्टम शताब्दि के हैं। अनुमान है कि यह अवशेष उस काल के हैं जब आर्य भारत में सुदृढ़ रूप से स्थापित हो गये थे। शायद यह महाभारत काल के समकालीन हों। सलेटी रंग के मृत्पात्रों के नीचे कुछ लाल मृत्पात्रों के भी बहुत छोटे २ खंड मिले हैं, और इनको हम सम्भवतः भारतीय ताम्रयुग का अवशेष मान सकते हैं, क्योंकि ऐसे टुकड़े राजपुर और बिठूर में भी उपलब्ध हुए हैं।

हस्तिनापुर के उत्खनन से अब प्रायः पूरे तारतम्य का ज्ञान हो गया है और हम इस परिणाम पर पहुंचे हैं कि अन्धयुग के कुछ काल में सलेटी रंग के चित्रित मिट्टी के बर्तनों का व्यवहार था। इस श्रेणी

के अन्य स्थानों की खुदाई से इस युग पर और महत्त्वपूर्ण प्रकाश पड़ने की आशा है।

बहादराबाद की खुदाई

भारत की अतीत सभ्यताओं के अवशेषों में ताम्र के कुछ उपकरण यदा कदा यत्र कुत्र उपलब्ध होते रहे हैं। इनके उपयोग करने वाले कौन थे, और कब उनका प्रादुर्भाव और लोप हुआ, यह भी भारतीय पुरातत्व की एक विशेष समस्या रही है। इस समस्या को हल करने की दृष्टि से भारतीय पुरातत्व विभाग आज कल हरिद्वार से छः मील दूर बहादराबाद नामक स्थान में खुदाई करा रहा है। एक वर्ष पूर्व नये बिजली घर के निर्माण के लिए नहर की खुदाई कराते हुए यहां २५-२६ फुट नीचे मिट्टी के बर्तनों के कुछ टुकड़े तथा तांबे के हथियार मिले थे। उत्तर प्रदेश में तांबे के हथियार पहले भी बिठूर (जि० कानपुर) सरथौली (जि० शाहजहांपुर) राजपुर (जि० बिजनौर) आदि अनेक स्थानों से मिल चुके हैं वे सब विभिन्न सग्रहालयों में सुरक्षित है। किन्तु उनकी प्राप्ति का ठीक ठीक स्थान अथवा मौलिक दशा ज्ञात न होने के कारण उनके सम्बन्ध में निश्चित कुछ नहीं कहा जा सकता। बहादराबाद ही इस समय एक मात्र ऐसा स्थान है जहां तांबे के हथियार तथा मिट्टी के बर्तनों के टुकड़े एक साथ पाये गए हैं। इन मिट्टी के बरतनों में और हस्तिनापुर में सब से नीचे पाये गए लाल बरतनों के टुकड़ों में कुछ सादृश्य की झलक है और इस आधार पर इन्हें ईसा पूर्व १२०० सन् का तो कहा ही जा सकता है। सम्भव है ये और भी पुरातन हों। किन्तु इन बरतनों का और हथियारों का ठीक २ काल निर्णय तब होगा जब उनका किसी ज्ञात सामग्री से पारस्परिक सम्बन्ध व तारतम्य निश्चित हो सकेगा।

यहां से पाये गये तांबे के हथियारों तथा उपकरणों में भाले का अग्रभाग, कुल्हाड़ा, छेनिया, कड़े और चूड़ियां हैं। भाले का फल और कुल्हाड़े की धार अबतक बहुत तेज हैं। कड़ों तथा चूड़ियों के विषय में यह निश्चित नहीं कि इन्हें स्त्रियां हाथों में ही धारण करती थीं या सारावाक (बोर्निया) की केलाबीत स्त्रियों की भांति कानों में पहनती थीं। दो अन्य ताम्र खण्डों का उपयोग अभी तक अन्तिम रूप से निश्चित नहीं हो सका किन्तु शायद इन से रन्दे का काम लिया जाता था।

जनता का सहयोग

हमारा देश बहुत बड़ा है। पुरातत्त्वज्ञ यहां बहुत कम हैं और पूर्णतया पुरातत्व की प्रणालियों से अभिज्ञ विद्वान् तो उंगलियों पर गिने जा सकते हैं। सब जगह उनकी पहुंच सम्भव नहीं। यह कार्य तभी सुचारु रूप से सिद्ध हो सकता है जब जनता इस में सहयोग दे। सब अपने आस पास के प्रदेश पर पूरा ध्यान रखें, उसका अध्ययन करें और पुरानी चीजों को प्रकाश में लायें। यह हर्ष की बात है कि हरिद्वार में गुरुकुल कांगड़ी में ऐसा सग्रहालय है जो इस प्रदेश के पुरातत्व एवं प्राचीन इतिहास से सबद्ध वस्तुओं का सग्रह कर रहा है। यहां निकटवर्ती स्थानों से जो ऐसी वस्तुएं उपलब्ध हों, आप उन्हें इस सग्रहालय के अध्यक्ष श्री हरिदत्त जी को लाकर दें ताकि उनका सम्यक अध्ययन हो सके। हरिद्वार जैसे प्राचीन एवं सांस्कृतिक दृष्टि से महत्वपूर्ण तीर्थ का पुराना इतिहास हमें पूर्णतया तभी विदित हो सकता है जब यहां के और निकट के निवासी पुराने अवशेषों को प्रकाश में लाने का यत्न करें। [सग्रहालय व्याख्यानमाला में गुरुकुल सग्रहालय में ८, ८, २००६ को दिये गये भाषण का संक्षिप्त रूप]।

अन्धियारी घाटी में ऋषि की ज्योति

श्री जयचन्द्र विद्यालङ्कार, सभापति, हिन्दी साहित्य सम्मेलन।

भग्न आशाओं और आत्मग्लानि की जिस अन्धियारी घाटी में से आज हमारा राष्ट्र गुज़र रहा है उसमें उसे हमारे उन गुरु और उनके गुरु दयानन्द के सन्देशों से ही ज्योति मिलती है। स्वामी श्रद्धानन्द जी हमें समझाया करते थे कि भारत की राजनीतिक गुलामी से अधिक गहरी आर्थिक गुलामी है और उससे भी अधिक गहरी दिमागी गुलामी। सन् १९३० ई० में सारे देश से स्वाधीनता की शपथ दिलाते हुए महात्मा गान्धी ने इसी बात को इस रूप में दोहराया था कि "अंग्रेज़ी शिक्षापद्धति हमारी संस्कृति को दबाते हुए हमें अपनी परिस्थिति से उखाड़ने की कोशिश करती है और अपनी जंजीरों से चिपटे रहना सिखाती है।" भारत के अंग्रेज़ी पढ़े हैसियतदार वर्ग का अपनी जंजीरों से वह लगाव ही आज भारत को उसकी स्वाधीनता के फलों से वञ्चित, बरबाद और लांछित कर रहा है तथा नई गुलामी की तरफ़ ले जा रहा है। भारत के जो नेता २७ बरस तक महात्मा गांधी की हाँ में हाँ मिलाते हुए मैकाले शिक्षणालयों को गुलामखाना कहते रहे, वे आज उन्हीं की जंजीरों को पूज रहे हैं।

सन् १९१९ में राष्ट्रीय शिक्षा पर मेरी एक पोथी की आलोचना करते हुए स्वामी श्रद्धानन्द जी ने लिखा था—इस पुस्तक में लेखक ने उस विषय पर विचार किया है जिस पर देश का भविष्य निर्भर है। आज भी देश का भविष्य राष्ट्रीय शिक्षा के पुनरुद्धार पर निर्भर है। उसी के आदर्श उसे आज की दुर्दशा से उबार सकते हैं। श्रद्धानन्द के अनुयायियों का आज यह विशेष कर्त्तव्य है कि उन आदर्शों के लिए डटकर खड़े हों। हम उन आदर्शों की भूमि पर दृढ़ता से खड़े हों तो देश की नाव को किसी भँवर में पड़ने पर चट्टान पर टकराने से अब भी बचा सकते हैं। हम न खड़े होंगे तो कोई दूसरा खड़ा होगा ही। पर तब भावी ऐतिहासिक हमारे बारे में क्या कहेगा? क्या हम उसे यह कहने का अवसर देंगे कि दयानन्द और श्रद्धानन्द की चलाई हुई लहर सन् १९४७ के बाद बुझा कारतूस सा हो गई थी, और कि श्रद्धानन्द के नाम लेवा केवल रस्म पूरी करने को उनका पर्व मना लिया करते थे?

आज हम अपने दिल पर हाथ रखकर इसका उत्तर दें। समय दौड़ता जा रहा है, हमें जो निश्चय करना है शीघ्र करें।

हम उनके चिर ऋणी हैं

भारत में ऐसा कौन अभागा होगा जो स्वामी जी के नाम और काम से अपरिचित हो। स्वामी जी का कार्य भुलाये नहीं भूल सकता। अपना ही बलि चढ़ाकर हिंदू धर्म की स्वामी जी ने जो सेवा की उसके लिये हिंदू समाज आपका सदैव ऋणी ही रहेगा।

गुरुकुल के रूप में आप जो स्वामी जी का कार्य चला रहे हैं उसमें दिन दुनी रात चौगुनी प्रगति होती जाय यही ईश्वर से प्रार्थना है। बलिदान दिन के अवसर पर मैं अपनी शुभकामना इस पत्र द्वारा भेज रहा हूँ।

दा० वि० गोखले, केसरी, पूना।

निर्भय कैसे बनें ?

सख्ये त इन्द्र वाजिनो मा भेम शवसस्पते ।

त्वामभि प्रणोनुमो जेतारमपराजितम् ॥ ऋक् १-११-२

ऋषिः जेतामाधुच्छन्दसः । देवता इन्द्रः । छन्दः अनुष्टुप् ।

भावार्थ—मेरी विचारधारा पवित्र और आह्लादक है, मेरे निश्चय मधुर हैं, और इच्छाएं दूसरों के लिए हितकर हैं। मेरे ये गुण कृत्रिम नहीं, अपितु आनुवंशिक होने से स्वाभाविक हैं।

हे बल के स्वामी, सब शत्रुओं पर विजय पाने वाले तथा किसी से भी पराजित न होने वाले ऐश्वर्यशालिन् (परमात्मन् व राजन्) हम आप को नमस्कार करते हैं।

हम स्वयं वाज के स्वामी हैं, किसी प्रकार के साधन की कमी नहीं। परिणामतः हम में हीनता या उच्चता की कोई गाठ नहीं। आपकी मित्रता में रहते हुए हम कभी किसी से डरे नहीं।

जब तक हम स्वयं शक्तिशाली नहीं बनगे तो बड़े से बड़ा मित्र भी कुछ नहीं कर पाएगा। देव उसी की सहायता करते हैं, जो अपनी सहायता स्वयं करता है (इच्छन्ति देवाः सुन्वन्तम्) । हम अपना कर्तव्य पूर्णता और परिश्रम से नहीं करेंगे तो हम से कोई सहानुभूति क्यों करेगा ? (न देवाः स्वप्नाय) ।

हम स्वयं जयशील हैं। हमारी आत्मा कभी पराजय स्वीकार नहीं करती। बड़े से बड़े कष्ट आने पर भी निराशा की भावना हम पर अभिभूत नहीं होती। इस लिए विश्वास है कि हम अपने प्रयत्न से ही सब बाधाओं को दूर कर के, कष्टों को सहन कर और शत्रुओं का पराजित करके विजयी बनेंगे।

यदि इस पर भी किसी कमी के कारण हमारी सफलता में सन्देह रहा तो हमें आप की मित्रता का भरोसा है। आप जैसे शवपति के होते हमें किस बात का भय !

साराश (१) हम कभी किसी का बुरा नहीं सोचते तो हमें कोई क्यों सताएगा या पराजित करेगा।

(२) हमारा सखा बड़ा बलवान् व किसी से न पराजित होने वाला है। इस लिए हमें सताने की हिम्मत कैसे होगी।

(३) हम स्वयं वाजपति हैं। सब तरह से साधन सम्पन्न हैं, इस लिए क्यों डरें। सदा निर्भय रहते हैं।

(४) लेकिन यह होते हुए भी हम में अभिमान नहीं है। अपने राजा और परमात्मा के प्रति हम सदा प्रणत रहते हैं।

अर्थः—मधु-पवित्र, आह्लादक, मधुर, हितकर। छन्दः—विचार निश्चय, इच्छा। वाज-अन्न, बल, धन, शक्ति, गति, भूति। शवः—बल।

—श्री मनोहर विद्यालंकार।

★

बर्तनों पर कलई चढ़ाने का इतिहास

सन् १३०० से १९०० ई० के मध्य में

श्री पी. के गाडे

[कार्तिक के पिछले अङ्क से]

१७ वीं शताब्दी में ईस्ट इण्डिया कम्पनी अपने दलालों द्वारा कलई (टिन) की नियमित रूप से बिक्री करवाती थी, इसकी पुष्टि तत्कालीन निम्नलिखित उद्धरणों से हो जाती है—

[१] भारत में जोहन मार्शल (१६६८ से १६७२ तक) ऑक्सफोर्ड १९२७, पृ० २२—

'बेचने के लिए भेजी हुई कलई की बिक्री।'

[२] इण्डिया आफिस के प्रामाणिक कागजात के रूप में सर विलियम फास्टर लिखित अतिरिक्त सामान की सूची (१६००—१६४० ई०) लन्दन १९२८ ई०, दिसम्बर १६१४—सूरत के व्यापार पर टिप्पणियां—

जिस सामान की मांग है उसमें यह सामान भी है—(कुछ) बन्दूकें, कलई' इत्यादि।

पृ४६६—१६१६ ई० टिन एक लाभप्रद वस्तु है।

पृष्ठ१४१— पराशिया ले जाई गई कलई।

पृष्ठ १०४—१६१६ ई०—पिलक (पेरक) की कलई इङ्गलिश-कलई की अपेक्षा अधिक अच्छी है।

सत्रहवीं शताब्दी में एशिया, परशिया और अरब के प्रदेशों में इङ्गलिश-कलई की एक बड़ी भारी मात्रा खर्च होती थी, जहां कि रकाबियों पर कलई चढ़ाई जाती थी। टावर्नियर के निम्नलिखित उद्धरण से इस की पुष्टि हो जाती है—

'चेद (जन्क सीलोन से ४५ मील दक्षिण की ओर मलयतट पर एक बन्दरगाह) और पेर के राजा का धन। वह धन कलई था पहले पहल अंग्रेज लोग इसे इङ्गलैंड से लाये थे और एशिया के बड़े भाग को वे भेजा करते थे जहां कि उन की कलई की बड़ी भारी खपत थी वे इसे अरब या फारस में भी ले गये। क्योंकि उन की सारी रकाबियां या तश्तरियां तांबे की होती हैं जिन पर हर महीने वे कलई चढ़वाया करते हैं ['बंगाल की खाड़ी के चारों ओर के देश' नामक किताब है (१६६६ से १६७६ ई०) जिस के रचयिता थौमस बौवरे हैं, हैक्लूयट सोसाइटी केम्ब्रज १९०५। उपर्युक्त नोट इस पुस्तक के पृष्ठ २८१ पर पाद टिप्पणी स० ३ में उद्धृत किया गया है]'—टावर्नियर जिल्द १ भाग २, पृ४ ६।

पकाने वाले बतन इत्यादि पर कलई चढ़ाने के लिए कलई का प्रयोग होता था इस विषय में टावर्नियर से एक और निम्नलिखित उद्धरण इस प्रकार है—(उस की 'यात्राओं' में पृष्ठ १६२-१६३) (जिल्द २, लन्दन, १८८९, अध्याय २५)—

'कुछ वर्ष पहले डेलीगार, सैंगोर, बौर्डेलोन और बट इन खानों पर कलई की बहुत समृद्ध खानें मिली थीं। इस से अंग्रेजों को कुछ हानि हुई है, क्योंकि अब एशिया में उन के टिन की कोई आवश्यकता नहीं है, जैसे पहले काफी आवश्यकता रहती थी, इसलिए कि एशिया में अब अपने यहां काफी टिन पैदा होने लगी है। इस देश (एशिया) में कलई का पकाने के बर्तनों पर, डेगचियों पर और दूसरे तांबे के बर्तनों पर कलई करने के लिए ही केवल

प्रयोग होता है।'

भारत में कलई चढ़ाने के इतिहास का अन्वेषण करते हुए उपर्युक्त लिखित साहित्य की साक्षी के बल पर हम लगभग सन् १५०० ई० तक आगये हैं।

इस साहित्यिक साक्षी की पुष्टि पुरातत्व की साक्षी से भी हो जाती है। जैसे—अन्दर और बाहर दोनों ओर कलई चढ़ाया हुआ एक तावे का पात्र कोल्हापुर में पाया गया है। (ब्रह्मपुरी की खुदाइयों में पाये गये) इस कलई किये हुये हुये पात्र की ओर मेरा ध्यान श्री डा० एच० डा० सङ्कलया और श्री डा० एम० जी० दीक्षित ने आकर्षित किया उस के लिए मैं उनका आभारी हूँ। 'डैकन कॉलेज पोस्ट ग्रेजुएट एण्ड रिसर्च इन्स्टिट्यूट' के अध्यक्ष श्री डा० एम० जी० दीक्षित ने २६ सितम्बर १९४९ को ब्रह्मपुरी में पाये गये कलई वाले पात्र के विषय में मुझे निम्नलिखित विशेषतायें लिखीं थीं—

(१) इन के फोटोग्राफ। (क) एक तावे का गोल अर्धवृत्ताकार खोखला कटोरे जैसा बर्तन, (ख) एक तावे का पात्र।

पहले बर्तन (क में) तावे के कटोरे पर कलई नहीं चढ़ी हुई है परन्तु तावे के दूसरे ख में) पात्र पर अन्दर और बाहर दोनों ओर कलई चढ़ाई हुई है।

(२) उपर्युक्त दोनों बतन डा० दीक्षित के अनुसार बाहमनी सिक्कों के साथ के हैं और इसलिए बाहामनी काल के ही (१३४७–१५०० ई०) समझने चाहिये।

(३) ब्रह्मपुरी से खुदाई में मिली वस्तुओं क विषय में जानकारी के लिए 'मराठी गाइड' नामक पुस्तक के सातवें पृष्ठ पर भी कलई किये हुए उस पात्र का वर्णन मिलता है। २५ दिसम्बर १९४८ को उक्त वस्तुओं की एक प्रदर्शनी भी डेकन कालेज रिसर्च इन्स्टिट्यूट' में आयोजित की गई थी।

हमारी वर्तमान समस्या के सुलझाने में यह पहले रक्खी गई पुरातत्व की साक्षी बहुत ही महत्व रखती है। क्योंकि यह भारत में तावे के बर्तनों पर कलई चढ़ाने के इतिहास को १३०० ई० तक पहुँचा देती है।

एक तावे या पीतल के बर्तन पर अन्दर और बाहर दोनों ओर कलई चढ़ाना यह विशेष रूप से मुस्लिम रिवाज है। जो कि अब तक प्रचलित है। इस के विपरीत गैर मुसलमान, और विशेष रूप से हिन्दू लोग सम्भवत मितव्ययता के आधार पर बर्तन म केवल अन्दर की ओर कलई चढ़वाते हैं। (कलई चढ़ाये हुए बर्तनों के स्थान पर) शुद्ध कलई के बर्तनों का प्रयोग भारत के कुछ भागों मे प्रचलित है। ऐसा प्रतीत होता है कि यह प्रथा भारत में कलई चढ़ाने (टिन कोटिंग) को प्रथा—जिसे कि मुसलमानों से लिया गया है—के प्रारम्भ होने से पहले ही भारत में प्रचलित थी। इस कल्पना की पुष्टि विद्यारण्य या सायण (१३७५ ई०) द्वारा बोधायन से लिये इस उद्धरण से भली भांति हो जाती है। जिसमें कि सोने, चांदी, तावे, कांसे, मिट्टी, टिन और सासे की रकाबियों का वर्णन है [विद्यारण्य ने निम्नलिखित श्लोकों को बोधायन से लेकर अपनी जीवन-मुक्ति विवेक (विद्वत् सन्यास प्रकरण) नामक पुस्तक में उद्धृत किया है। (अड्यार सस्करण १९३५, १५९ पृष्ठ, इङ्गलिश अनुवाद सहित)] —

बोधायनोऽपि—

स्वयमाहृतपर्णेषु स्वयं शीर्णेषु वा पुनः।
भुञ्जीत न वटाश्वत्थकरञ्जाना च पर्णके॥
आपद्यपि न कांस्येषु मलाशी कांस्यभोजनः।
सौवर्णे राजते ताम्रे मृण्मये त्रपुसीसयो॥ इति
(२१६ पृष्ठ पर इङ्गलिश अनुवाद)—उसे

(सन्यासी को) अपने हाथों से तोड़े हुए या स्वय मुरझा कर गिरे हुए पत्तों पर भोजन करना चाहिए परन्तु बट, अश्वत्थ या करञ्ज के पत्तों का उसे कभी उपयोग नहीं करना चाहिए । यहा तक कि जब वह जीवन की विषम से विषम परिस्थिति में हो तब भी उसे न तो कांसे की तश्तरी में ही कभी खाना चाहिये—क्योंकि जो कासे की तश्तरी में खाता है वह केवल धूल फाकता है—और न ही उसे कभी सोने, ताबे मिट्टी या सीसे की तश्तरी में खाना चाहिये'

यदि उपर्युक्त उद्धरण का धर्म सूत्र—जो कि उस के नाम से प्रसिद्ध है—के लेखक बोधायन (२५० ई० पू०) के ग्रन्थों से लिया गया माना जाय तो शुद्ध टिन के बर्तनों की प्राचीनता निश्चित रूप से २००० वर्षों से भी अधिक सिद्ध की जा सकती है । यह उद्धरण जिस रूप में इस समय मिलता है । यह १३०० ई० से भी पहले का प्रतीत होता है । अर्थात् इस निबन्ध में प्रतिपादित कलई चढ़ाने के इतिहास से भी प्राचीन है । त्रपु की प्राचीनता और भारत के सांस्कृतिक इतिहास में इसके अनेकों उपयोगों पर अन्वेषण का कार्य कोई विद्वान् अपने हाथ में लें—इस बात की महती आवश्यकता है ।

इस निबन्ध को समाप्त करते हुये अन्त में मैं अपने पाठकों से प्रार्थना करता हूँ कि १३०० ई० से पहले संस्कृत या संस्कृत भिन्न किन्हीं ग्रन्थों में यदि कलई चढ़ाने के विषय में उन्हें कोई संकेत मिले तो अवश्य नोट करें ।

इस विषय में नागपुर के मेरे एक मित्र श्री के० एन० दबे ने ३१-८-४९ को डा० एस० वर्मा द्वारा अपने कुछ विचार मुझे भेजे थे । मैं उनका बहुत आभार मानते हुए उन्हें यहां उद्धृत कर रहा हूँ—

'यद्यपि अथर्ववेद[1] में भी कलई (त्रपु) का वर्णन आता है तथापि मुझे ताबे या कासे के बर्तनों पर कलई चढ़ाने के विषय में इसका कोई उपयोग नहीं मिला है । इसके विपरीत मानसोल्लास (११३० ई०) में-भाग २ पृष्ठ ११६ और १३१ पर (साधारण बिना कलई किये हुए) ताबे के बर्तनों खाली) में अनाज एवं मास पकाये जाने का उल्लेख है इससे स्पष्ट है कि भारतवर्ष में कलई चढ़ाने की कला का प्रवेश मुसलमानों द्वारा हुआ था। बर्तनों या भगोनों पर कलई चढ़ाने की प्रक्रिया के लिए मुझे संस्कृत या हिन्दी का कोई भी शब्द नहीं मिला है। हिन्दी में 'कलई करना' प्रयोग स्पष्ट रूप से अरबी के कलई' शब्द का ही रूपांतर है ।

---

१ सर पी० सी० राय ने अपनी 'हिन्दू केमिस्ट्री' भाग १ (कलकत्ता १६०२) के ८३ पृष्ठ पर शुक्ल यजुर्वेद (१८ । १३) और छान्दोग्य उपनिषद् (४ । १७, ७) में वर्णित धातुओं के नामों की ओर निर्देश किया है । शुक्ल यजुर्वेद में जैसे—लोहा, सीसा, कलई (त्रपु) सोना और चांदी—ये नाम आये हैं । इसी प्रकार छान्दोग्य उपनिषद् में आये हुए नाम ये हैं—सोना चादी, कलई (त्रपु), सीसा और लोहा । सुश्रुत (अध्याय ३८) में टिन (पृष्ठ २४) के आतरिक उपयोग का वर्णन है । इसी प्रकार वाग्भट्ट (पृ० ३०) रसार्णव और रसरत्नसमुच्चय (पृ० ४२, ७२) में भी कलई का वर्णन मिलता है ।

—अनुवादक-श्री सत्यव्रत गुप्त।

★

अखण्ड स्फूर्ति का स्रोत

श्री माधव रामचन्द्र ओक, तत्त्वज्ञान मन्दिर, अमलनेर।

इस पर्व का महत्त्व जैसे श्री स्वामी जी के महान् कार्य के प्रति कृतज्ञता प्रकाश की दृष्टि से है वैसे ही उनके दिव्य चरित्र से अक्षय स्फूर्ति प्राप्त करने की दृष्टि से भी है।

श्री स्वामी श्रद्धानन्द का संपूर्ण जीवन वैदिक आर्यधर्म के पुनरुज्जीवन रूपी महान् ध्येय के प्रति समर्पित था। श्री स्वामी जी ने प्राचीन शिक्षा-प्रणाली को वर्तमान युग मे प्रभावी तथा कार्यक्षम बनाने के हेतु गंगा-तट पर तपोवन तुल्य रम्य उपवन में गुरुकुल की स्थापना कर इस महान् प्रयोग को अत्यन्त सफलता के साथ कार्यान्वित कर दिखाया। भरतपुर तथा अलवर रियासतों के निवासी असंख्य राजपूतों को मुगलों के समय बलात् मुसलमान बनाया गया था। इनकी सामुदायिक शुद्धि करके पुनश्च हिन्दूधर्म में सम्मानित पद देने का महान् कार्य स्वामी श्रद्धानन्द जी ने अत्यन्त विशाल परिमाण पर किया। आज से ३५-३६ वर्ष पूर्व दो तीन साल तक अनवरत चलने वाले इस शुद्धिकरण के समारोह को हमें अपनी आंखों से प्रत्यक्ष देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। स्वयं स्वामी जी ने ही अपने साथ ले जाकर हमें गुरुकुल भी दिखाया था। इन सब बातों की स्मृति आज भी अमिट रूप से हमारे हृत्पटल पर अंकित है। श्री स्वामी जी को स्वधर्म-जागृति के अपने महान् ध्येय में अभूतपूर्व सफलता पाते देख कुछ कुटिल लोग भयभीत हुए और अत्यन्त कायरतापूर्ण कपट के साथ असमय ही स्वामी जी की इहलोक की यात्रा समाप्त कर दी गई। लेकिन विश्व का इतिहास इस बात का साक्षी है कि महापुरुषों के बलिदान से उनके ध्येय की पूर्ति खण्डित न हो कर कई गुना अधिक रूप से होती है।

श्री स्वामी जी की पावन स्मृति अखण्ड स्फूर्ति का स्रोत बनकर सक्रिय रूप से समस्त भारत निवासियों के अतःकरणों मे निरंतर जगती रहे यही प्रार्थना है।

❀

त्यागमय भावना

श्री चरणसिंह, माल तथा कृषि मन्त्री, उत्तर प्रदेश।

आज वह ऐतिहासिक दिवस है जब स्वर्गीय स्वामी श्रद्धानन्द की स्मृति स्वतः जागृत हो उठती है। उन्होंने जीवन पर्यन्त जातिगत असमानता एवं भेद-भावों को समाज से दूर करने का प्रयत्न किया और इस अभिशाप को मिटाने के लिए छुआछूत के विरुद्ध निरन्तर संघर्ष किया। उन्होंने वैदिक धर्मानुकूल मार्ग पर चलने का संदेश दे कर जनता को अपनी प्राचीन परम्परा अपनाने एवं शुद्ध भारतीय आदर्श के अनुरूप जीवन व्यतीत करने की प्रेरणा प्रदान की। देश का वास्तविक उत्थान तभी हो सकता है जब स्वामी जी के जीवन से प्रेरणा प्राप्त कर त्यागमय भावना से हम कर्तव्य-पथ पर अग्रसर हों। हमारे यहां के शिक्षा-केन्द्र इस दिशा में सबसे बड़ा योग दे सकते हैं। मुझे पूर्ण आशा है कि आपका यह शिक्षा-केन्द्र इस कार्य के सम्पन्न करने में सफल होगा।

❀

स्वामी जी की याद

श्री ठाकुरदत्त शर्मा वैद्य।

नाम लेते ही वह विशाल मूर्ति हमारे सम्मुख आजाती है, जिसको हमने लाला मुंशीराम प्लीडर, आर्यसमाज के नेता महात्मा मुन्शीराम और आर्यसंन्यासी स्वामी श्रद्धानन्द इन तीन रूपों में देखा है। वे दिन भी याद हैं जब कि आर्यसमाज वच्छोवाली के वार्षिकोत्सव पर सहस्रों नर-नारी एकत्रित होकर इस बात की क्षण क्षण प्रतीक्षा करते रहते थे कि अब की वार हमारे लिए क्या संदेश आता है? लोग खड़े खड़े थक भी जाते थे, किन्तु किसी स्थल पर रत्ती भर भी हल्ला मचाने का साहस किसी को नहीं होता था। उनकी वाणी का एक शब्द भी कहीं छूट न जाय, यही सबकी कामना होती थी।

ऋषि दयानन्द के इस श्रद्धालु भक्त के हृदय में जब आर्य-संस्कृति की रक्षार्थ गुरुकुल स्थापित करने की लगन लगी तो घर त्याग कर इस कठिन प्रण की भी पूर्ति कर डाली। गुरुकुल के वे दिन भी याद हैं जब यह विशाल मूर्ति जिस ओर चल पड़ती, उसी ओर सहस्रों शिर श्रद्धावनत हो जाते। ब्रह्मचारी गण उनके चरणों में बैठना अपना अहोभाग्य मानते।

स्वामी श्रद्धानन्द का बलिदान-दिवस मनाने वाले ब्रह्मचारियों को मेरा तो यही सन्देश है कि श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी की स्मृति मनाना है तो उनके 'गुरुकुल' की कीर्ति को सदैव स्थिर रक्खें। अपने गुणों और दोषों पर हृदय से विचार करके सद्गुणों की श्री वृद्धि करें और अवगुणों का परिवर्जन। जिससे जनता पुनः गुरुकुल में आकर एक स्वर से यह जय घोष करने का पुण्य अवसर प्राप्त करे—

"बोलो ऋषि दयानन्द के सच्चे भक्त स्वामी श्रद्धानन्द की जय।"

❀

भारतीय संस्कृति के उन्नायक

श्री शिवपूजन सहाय, मन्त्री, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना।

बलिदानी श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी का आदर्श जीवन कल्याण-मार्ग के पथिकों के लिए प्रकाश-स्तंभ के समान है। अपने महान् एवं पवित्र सिद्धांत के लिये आत्मोत्सर्ग करके उन्होंने संसार के चिरस्मरणीय शहीदों में बहुत ऊंचा और आदरणीय स्थान अधिकृत किया है। राजनीति, अर्थ, समाज, शिक्षा और साहित्य के लिए उनकी देन अमूल्य और गौरवपूर्ण है। प्राचीन भारतीय सभ्यता और संस्कृति के उन्नायकों में उनका नाम अनेक युगों तक बड़े आदर से लिया जायगा। हम इस अवसर पर उनकी मृतात्मा के प्रति हार्दिक श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं।

❀

सत्वशाली संस्था

श्री डोलरराय मांकड, वल्लभ विद्यानगर, आनन्द।

आप श्रद्धानन्द-पर्व मना रहे हैं, इस प्रसङ्ग पर मैं आपकी संस्था की उन्नति बढ़ती रहे, ऐसी प्रार्थना करता हूँ। आपकी संस्था एक विशेष ढंग से और आदर्श से काम कर रही है और देश की सत्त्वशाली संस्थाओं में से एक है।

दिव्य विभूति

आचार्य शिवपूजनसिंह कुशवाहा 'पथिक'

आदरणीय स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज का जन्म विक्रम संवत् १६१३ में पञ्जनदप्रान्त 'जालन्धर मण्डलान्तर्गत, 'तलवन' उपनगर में एक क्षत्रिय के यहां हुआ था। प्रारम्भ में आप नायब तहसीलदारी व मुख्तारी करते रहे. पुनः आर्यसमाज में प्रवेश किया। आर्यसमाज में प्रवेश करते ही आपकी कायापलट हो गई और आचार-विचार व भोजन की शुद्धता ऐसी हुई कि जीवन पर्यन्त वैसी ही रही।

आप में आर्यसमाज के प्रचार की बड़ी लगन थी। शुद्धि और संगठन के कार्यों को तो आपने अत्यन्त परिश्रम, श्रद्धा व प्रेम के साथ किया। स्वामी जी ने आर्यसमाज में जो कुछ किया वह अवर्णनीय है। आपके स्थान की पूर्त्ति आज तक नहीं हुई। राष्ट्रीय आन्दोलन में भी आपने प्रमुख भाग लिया था। आपकी सब से अपूर्व देन "गुरुकुल" है। आपने महर्षि दयानन्द जी के स्वप्न को पूर्ण करके असम्भव को सम्भव बना दिया। मेकाले की शिक्षा-प्रणाली से देश को ईसाइयत के प्रवाह में प्रवाहित होने से बचा लिया।

स्वामी जी का लगाया हुआ वह नन्हा सा पौधा आज विशाल विश्वविद्यालय के रूप में भागीरथी के पवित्र तट हरिद्वार में स्थित है जिसकी उपाधियों को सरकार ने मान लिया है। आज सचमुच गुरुकुल का मान प्रशस्त हो गया है। इस गुरुकुल से अनेकों स्नातक निकल चुके हैं जो सफल लेखक, प्राध्यापक, पत्रकार, महोपदेशक, वैद्य, डाक्टर, विश्वविद्यालयों में लेक्चरार प्रभृति हैं। इस गुरुकुल शिक्षा प्रणाली से राष्ट्रभाषा हिन्दी की जो उन्नति व प्रचार हुआ है वह प्रशंसनीय है। चारों वेदों के भाष्यकार, निरुक्त के भाष्यकार, मङ्गलाप्रसाद पारितोषिक विजेता गुरुकुल के अनेक स्नातक हैं।

सन् १६१६ में रॉलट एक्ट के विरोध में जब देश में क्रान्ति मची तब स्वामी जी महाराज उसमें आगे थे। देहली के जामा-मस्जिद में वेद-मन्त्रों को उच्चारण करके भाषण देना आपका ही कार्य था।

आपने देश, जाति, राष्ट्र के लिए जो कुछ भी किया वह स्वर्णाक्षरों में अङ्कित है। वास्तव में आप आर्यावर्त की एक पवित्र दिव्य विभूति थे। हम इस अमर हुतात्मा के प्रति अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित करते हैं।

श्रद्धा की मूर्ति

श्री स्वामी स्वतंत्रतानन्द

स्वर्गीय महात्मा जी का जीवन अनुकरणीय था उनमें धर्म का अगाध प्रेम था, वह श्रद्धा की मूर्ति थे।

उनके मन में जो बात थी, वही कहते और लिखते थे। उसी के अनुसार जीवन व्यतीत करते थे। भगवान आप को तथा अन्यों को सामर्थ्य दे कि उनके इस गुण का हम सब आचरण कर सकें।

निःस्वार्थ जीवन

श्री विनायक गणेश साठे बम्बई

श्री पूज्य स्वामी जी के साथ मेरा सम्बन्ध १६०५ से १६१५ तक बराबर दस वर्ष तक रहा और इतने अर्से में उनका सादा जीवन, अनथक कार्य करते रहने की प्रणाली, छोटे से लेकर बड़े तक सर्व कार्यकर्ताओं के साथ प्रेम का बर्ताव और विशेषतः गुरुकुल संस्था को पक्की बुनियाद पर स्थिर करने की उनकी महत्वाकांक्षा—इन सब बातों का मुझ पर बहुत प्रभाव पड़ा। उनके निःस्वार्थ जीवन का और शुद्ध आचार विचार और प्रचार का परिणाम प्रायः सब लोगों पर हुआ करता था और जब जब आप आर्य-सिद्धान्तों के प्रचार के लिए व्याख्यान दिया करते थे तब उनकी भव्य और विशाल मूर्ति से और इनके हृदय से निकलने वाले शब्द प्रवाह में बह बह कर स्वयं स्फूर्ति से श्रोताओं के मन में त्याग की प्रवृत्ति उछलती रहती थी।

श्री स्वामी जी बराबर कहा करते थे कि अपने देश में द्रव्य की कमी नहीं है परन्तु सच्चे और निःस्वार्थी कार्यकर्ताओं की नितांत कमी है। यदि ऐसे कार्यकर्ता अधिक संख्या में दिन ब दिन बढ़ते रहेंगे और निरलस और दीर्घ उद्योग और पूर्ण विश्वास और प्रेम से हाथ में लिए हुए कार्य को लगातार करते रहेंगे तो ही ऐसे पर्व को मनाना यशस्वी होगा। अतः मेरी नम्र प्रार्थना है कि सब गुरुकुल-वासी विद्यार्थी और प्रेमी स्वामी जी के लगाये हुए वृक्ष को नित्य प्रति सिंचन करते रहेंगे और उस वृक्ष को मधुर फलों से लदा हुआ देखेंगे। ❀

आदर्श यशस्वी जीवन

श्री रामरत्न पाठक बेगूसराय।

महर्षि दयानन्द जी महाराज के उपदेशामृत का पान कर श्री श्रद्धानन्द जी महाराज ने कल्याण-पथ का पथिक बन जिस यशस्वी एवं तेजोमय जीवन का आदर्श मानव समाज के सम्मुख उपस्थित किया उसे एतद्देशीय ही नहीं वरन् विश्व का मानव समाज अपना रहा है और भविष्य में भी अपनायेगा। कुलगुरु का जीवन मानव-समाज को उन्नति की ओर अग्रसर करने के लिए सर्व सुलभ सोपान है। हम इस पर्व के अवसर पर उनके तेजोमय जीवन का संस्मरण कर अपने को बड़भागी मानते हैं।

❀

आत्म विजय की दीक्षा

श्री डी० आर० भट्टाचार्य,

उपकुलपति, प्रयाग विश्वविद्यालय।

मुझे पूर्ण विश्वास है कि स्वामी जी की आत्मा गुरुकुल की पुण्य-भूमि में व्याप्त होगी और आज भी अपना वह अमर संदेश प्रसारित कर रही होगी, जो संदेश हमें धृति, आत्मज्ञान और आत्मविजय की दीक्षा देता है, और हमें अपने मानव-बन्धुओं के प्रति गहरी सहानुभूति और सद्भावना पैदा करता है। ❀

स्फूर्तिदायक स्मृति

श्री महेन्द्रप्रताप, लखनऊ

पूज्य स्वामी जी की स्मृति स्फूर्तिदायक है। उनके त्याग, अदम्य उत्साह और कर्तव्य-परायणता आदि गुण चिरकाल तक पथ प्रदर्शन करते रहेंगे। प्रभु कृपा करें हम भी उनसे कुछ सीखें। ❀

अमर आत्मा

श्रीराम वाजपेयी, अध्यक्ष, भारत स्काउट्स, प्रयाग।

हिंदू समाज के दुर्बल शरीर को जाति-वैमनस्य और अस्पृश्यता के कोढ़ ने सर्वथा गलित, दुर्गन्धित कर डाला था, परिणाम स्पष्ट दृष्टिगोचर हो रहा था—संसार की जीवित जातियों की सूचि से उसका नाम मिटने वाला था। ऐसे समय में महर्षि दयानन्द सरस्वती ने अवतरित हो उसके कायाकल्प के लिए वैदिक धर्म और आर्यसमाज के अभूतपूर्व योग का अनुसंधान कर उसके परीक्षण में निज प्राणों की आहुति दे दी।

महर्षि के बलिदान की पवित्र अग्नि ज्वाला से तप शुद्ध हो स्वामी श्रद्धानन्द ने हिन्दुत्व के उस विकृत शरीर की शुद्धि का बीड़ा उठाया और राष्ट्रधर्म की बूटी का उस योग में मिश्रण कर उसे अचूक बना दिया। रोग की जड़ पकड़ ली गई; उसने नष्ट होने से पूर्व अपना प्रभाव दिखाया—वह स्वामी श्रद्धानन्द का कातिल बनकर आया—स्वामी जी का नश्वर शरीर तो न रहा किंतु उनकी अमर आत्मा ने हिन्दुत्व को अमरत्व प्रदान कर दिया।

गुरुकुल कांगड़ी आज अपने उन्हीं 'कुलगुरु' प्रातः स्मरणीय स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज का बलिदान-पर्व मना रहा है। इस पुण्य-तिथि में मैं श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज के प्रति अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित करते हुए अपने को धन्य मानता हूं। स्वामी जी की अमर आत्मा हम सबको अपना सच्चा अनुयायी बनने की क्षमता प्रदान करे।

❀

तप और त्याग की चट्टान

श्री आनन्द स्वामी जी, सरस्वती।

श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी के सारे जीवन की घटनाओं को जब मैं अपने समक्ष लाता हूँ तो मेरे अन्दर से यही आवाज उठती है कि स्वामी जी के जीवन की आधार शिला तप और त्याग की चट्टान पर रक्खी गई थी, उनका सारा जीवन तप और त्याग का था और यह उसी तप त्याग की कृपा है जो गुरुकुल को आज भी हम फला-फूला देख रहे हैं। जब तक तप और त्याग के पवित्र जल से इसे सींचा जाता रहेगा यह निरन्तर बढ़ता तथा फलता रहेगा। स्वामी जी के बलिदान पर्व को मनाते हुए आओ, हम निश्चय करें कि इस पवित्र संस्था के लिए हम कितना तप और त्याग करेंगे। इसी निश्चय से हम स्वामी जी के लिए श्रद्धा के फूल भेंट करने के अधिकारी हो सकेंगे।

❀

पुण्य विभूति

गा० बी० देवस्थली,

अध्यक्ष संस्कृत विभाग, नासिक कॉलेज।

स्वामी जी जैसे पुण्य विभूतियों का स्मरण अवश्य-स्फूर्तिप्रद होता है। ऐसे समारम्भ से हरएक देश प्रेमी बान्धव बहुत कुछ लाभ उठाकर आत्मोन्नति जरूर कर सकेंगे। स्वामीजी के गुणों और चरित्र का स्मरण और मनन करके उनका सक्रिय अनुकरण करने में ही समारम्भ की सफलता है।

ईश्वर से प्रार्थना है कि वे हमें हुतात्मा श्री स्वामी जी के चरित्र सामने रखते हुए उनका अनुकरण करने की और अल्पस्वल्प भी सेवा(जनसेवा)करने की इच्छा और बुद्धि दें।

❀

स्वामी जी की देन

डा० मुहम्मद हाफिज सैयद,
प्रयाग विश्वविद्यालय।

मैं स्वामी श्रद्धानन्द जी से परिचित था। मुझे अच्छी तरह याद है कि आज से ५० वर्ष पहले १९०२ में मैंने उनको एक पत्र लिखा था और यह प्रार्थना की थी कि आप मुझे अपने गुरुकुल में दाखिल कर ले। इसके बाद १९०६ में कलकत्ते से वापसी के समय जब हम लोग इन्डियन नेशनल कांग्रेस के इजलास समाप्त होने के बाद आ रहे थे तो रेल में प्रोफेसर रामदेव जी से परिचय हुआ और उनकी कृपा द्वारा मैंने पहली बार गुरुकुल १९१२ में देखा और वैदिक मेगजीन मे गुरुकुल की प्रशंसा के लिए लेख लिखा। इस तरह से इस विश्वविद्यालय से मेरा मानसिक सम्बन्ध बराबर जारी रहा, और अब तक है। मैंने भारतवर्ष के अनेक विद्यालयों को देखा है और पश्चिमी देशों में यूरोप के भी बहुत से विद्यालयों का निरीक्षण किया है। मैं आप लोगों को विश्वास दिलाता हूँ कि मैंने गुरुकुल कांगड़ी जैसा विद्यालय अभी तक कहीं नहीं देखा। मैं ये सब बातें इस लिए लिखता हूँ कि स्वामी श्रद्धानन्द महाराज का सबसे बड़ा काम और सबसे बड़ी सेवा इस विद्यालय का स्थापित करना था। रहती दुनियां तक यह विद्यालय स्वामी जी के नाम को प्रकाशित करता रहेगा। जो लोग प्राचीन वैदिक सभ्यता के प्रेमी हैं और जो पश्चिम की शिक्षा से असन्तुष्ट है वे गुरुकुल कांगड़ी को बहुत बड़ी चीज मानते हैं। इस विद्यालय ने इस विषय का प्रमाण दिया है कि गुरु और शिष्य का क्या सम्बन्ध होना चाहिए और ये दोनों मिलकर शिक्षा के उत्तम से उत्तम सिद्धांतों को प्रतिदिन जीवन मे कैसे पालन कर सकते हैं। इससे बढ़कर यह है कि गुरुकुल मे ब्रह्मचर्य्य का जिस तरह पालन किया जाता है वह न केवल भारतवर्ष ही मे बल्कि सारे संसार मे इसका दूसरा नमूना नहीं मिलता। गुरुकुल प्रेमियों और अध्यापकों से यह प्रार्थना है कि स्वामी श्रद्धानन्द के आदेशों को जीवित रखने का पूर्ण परिश्रम करें। और वर्तमान समय के शिक्षाओं के जो आदर्श हैं उनमें से उन आदर्शों को जो वैदिक धर्म, और नियम के विरुद्ध न हों उनको स्वीकार करें।

विश्व के महान् हुतात्मा

श्री संगमलाल अग्रवाल, उपकुलपति,
महिला विद्यापीठ, प्रयाग।

स्वामी जी मनुष्यों में सिंह थे, महान् शिक्षाशास्त्री और निःस्पृह देशभक्त थे। अपने सिद्धांतों के लिए हर प्रकार का त्याग करने के लिए वे हमेशा ही उद्यत रहते थे। अन्ततः वे विश्व के महान् हुतात्माओं के दल में जा मिले।

उनके विचार हमें जागृत रखें

श्री कुञ्जीलाल दुबे, वाइस-चांसलर,
नागपुर विश्वविद्यालय।

स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज के समान त्यागी तथा देश-प्रेमी महापुरुषों की ही हमारे को आवश्यकता है। हमें विश्वास है कि उनके विचार और कार्य हमें अपने जीवन में सदैव जागृत किये रहेंगे।

न्याय के पालक

पं० सुन्दरलाल जी, प्रयाग।

स्वामी जी जिस काम को ठीक समझते थे उसे पूरा करने में जिस ज़बर्दस्त लगन, साहस और त्याग के साथ जुट जाते थे, वह बात आज देश के लोगों में बहुत ही कम दिखाई देती है। वे जिसे 'न्याय' समझते थे उसके लिए 'निन्दतु नीति निपुणाः…' वाले श्लोक को अपने जीवन में पूरी तरह उतार देते थे। ❀

आत्मोत्सर्ग की निर्भीक भावना

गजानन विश्वनाथ केतकर, पूना।

हमारी शानदार भारतीय परम्परा के जो उदात्त आदर्श हैं स्वामी जी उन सब की मूर्ति थे। स्वाधीनता की प्राप्ति के बाद इस बात की आवश्यकता है कि स्वामी जी की आत्मोत्सर्ग की निर्भीक भावना को हम अपना आदर्श बनायें। ❀

आत्मोत्सर्ग का आदर्श

गोकुलचन्द नारंग

श्री स्वामी जी ने गुरुकुल कांगड़ी जैसी अनुपम संस्था की स्थापना के लिए जो अगाध अध्यवसाय और महान् त्याग किया उसे कोई कैसे भुला सकेगा ? केवल यही नहीं, स्वामी जी ने राजनीति के क्षेत्र में भी साहस और आत्मोत्सर्ग का आदर्श स्थापित कर दिया। उनकी सफलताएं उनके अनुगामियों और प्रशंसकों को शुभ प्रेरणा देती रहेंगी इस में कोई संदेह नहीं। ❀

ऊर्ध्वगामी जीवन

श्री असितकुमार हालदार, आचार्य लखनऊ कलाशाला।

जिस व्यक्ति ने जीवन भर महत्व के शिखर की ओर जाते हुए सबके जीवन को ऊर्ध्वगामी बनाया। वह घातक के हाथ से मरण पाकर अमर हो गया और उसका जीवन प्रतिदिन प्रातःकाल में स्मरणीय हो गया। ❀

जगत का अन्धकार दूर करने वाले

श्री निवासमूर्ति, अध्यक्ष, अडयार-पुस्तकालय।

स्वामी जी के आध्यात्मिक बचनों के प्रभाव से इस जगत का अन्धकार दूर हुआ है। मैं भगवान से प्रार्थना करता हूं कि ऐसे लोकोपकारी महर्षियों के बलिदान-पर्व उत्सव शुभदायक हों।

श्रद्धानन्दयतेः कीर्त्तिराकल्पं जयतादिह।
येनाध्यात्मवचोभाभिर्घानि ध्वान्तमान्तरम्॥

❀

अनुकरणीय जीवन

भक्तिप्रसाद के० त्रिवेदी पुस्तकाध्यक्ष,
रायल एशियाटिक सोसाइटी, बम्बई-शाखा।

श्री स्वामी जी का जीवन समस्त भारत-वासियों के लिए अनुकरणीय है और उन पुण्यात्मा की रश्मिओं के प्रभाव से भारत उन्नतर, दृढ़तर, और स्वतंत्र बना रहेगा इसमें सन्देह नहीं है।

श्री महाराज जी का तेजोमय जीवन भारत वासियों के लिए प्रेरक बना रहे ऐसी कृपा हम लोगों पर सदा रहे। ❀

ऋषि के स्वप्नों को मूर्तरूप देने वाले

श्री मानकचन्द्र

मन्त्री, आर्य प्रतिनिधि सभा, पंजाब।

स्वर्गीय श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज भारत की उन विभूतियों में से थे जिन पर भारत उचित रूप से गर्व कर सकता है। १६ वीं शताब्दी के महान् ऋषि दयानंद के स्वप्नों को मूर्त रूप देने का सौभाग्य श्री स्वामी श्रद्धानंद जी को प्राप्त था। हुतात्मा श्रद्धानन्द जी के पवित्र गुरुकुल में शिक्षा प्राप्त करने वाले ब्रह्मचारियों के लिए मेरा यही संदेश है कि उन्होंने जिन भावनाओं से गुरुकुल की स्थापना की थी, उन भावनाओं की रक्षा और विकास करना गुरुकुल के ब्रह्मचारियों का परम कर्तव्य होना चाहिए। बाह्य शिक्षणालयों के दूषित वातावरण के प्रभाव से ब्रह्मचारियों को सर्वथा दूर रहना चाहिए। और अपने अन्दर उन्हीं आदर्शों को पैदा करना चाहिए जिन आदर्शों को लेकर स्वामी श्रद्धानन्द जी ने गुरुकुल की स्थापना की थी।

❈

प्रेरणा का अजस्र स्रोत

स्वामी अभेदानंद।

स्वामी जी का जीवन हम सब के लिए पथ प्रदर्शक है और प्रेरणा का अजस्र स्रोत है।

❈

बल देने वाला जीवन

श्री मगनभाई आचार्य, गुजरात विद्यापीठ।

स्वामी जी का जीवन हमें सदा के लिए प्रेरणा और बल देने वाला है। उसे स्मरण कर हम पवित्र बनें। ❈

निष्काम सेवा

श्री गोविंद सखाराम सरदेसाई।

मेरा दृढ़ विश्वास है कि आज की विपन्न अवस्था में देश के उद्धार का एकमात्र उपाय मानव की जाति की निष्काम सेवा है, जिस के लिए स्वामी जी ने अपने जीवन का अर्पण कर दिया। उनकी पुनीत स्मृति हमें अपने कर्त्तव्य पालन के लिए प्रेरणा देती रहे।

❈

देशभक्ति का सन्देश

श्री लज्जावती, कन्या महाविद्यालय, जालन्धर।

श्री स्वामी जी का बलिदान चिर काल तक गुरुकुल के विद्यार्थियों को, साहस, त्याग देशभक्ति का संदेश देता रहे और निर्भीक होकर कर्त्तव्य पथ पर चलने के लिए प्रकाश स्तम्भ का काम करता रहे, ऐसी भगवान् से मेरी प्रार्थना है।

❈

वेदों के पवित्र ज्ञान का सन्देश

श्री स्वामी आत्मानंद सरस्वती।

यह पवित्र दिन हम आर्य आत्माओं में धर्म के लिए बलिदान की भावना का जागरण उत्पन्न करे ऐसी प्रभु से प्रार्थना है। इस समय का संदेश एक ही है जो कि महर्षि दे गये और जिसे कार्य-क्रम के रूप में भी स्वामी जी महाराज ने हमें दिया, और वह है–वेद के पवित्र ज्ञान का संदेश। मैं आशा करता हूँ कि पूज्य स्वामी जी के गुरुकुल में आप इसे हृदय की आँखों से ओझल न होने देंगे। ❈

कांधला में कुल की विजय

काँधला (जि० मुजफ्फ़रनगर) के हॉकी टूर्नामैंट में ब्र० सुधाकर के नायकत्व में गुरुकुल का हॉकी दल भी खेलने के लिए गया था। उस टूर्नामैंट में गुरुकुल दल विजयोपहार (ट्राफी) जीत कर लाया है। वहां ब्र० भूदेव राव और ब्र० ताराचन्द्र का खेल-पाटव प्रशंसनीय रहा। कुल में लौटने पर विजयी दल का बड़े उल्लास से स्वागत किया गया।

संस्कृतोत्साहिनी सभा

महाविद्यालय विभाग के अन्तेवासियों की इस सभा का वार्षिक सम्मेलन उस दिन श्री प० बुद्धदेव जी विद्यालंकार के सभापतित्व में बड़ी मनोहरता और शांति के साथ संपन्न हुआ। सम्मेलन का समस्त कार्य-कलाप देववाणी में हुआ। ब्र० ओम्प्रकाश (अम्बाला) को निबन्ध प्रतियोगिता का प्रथम पुरस्कार प्राप्त हुआ। कथा-प्रतियोगिता में ब्र० क्रांति कृष्ण की कहानी सर्वोत्तम मानी गई और पुरस्कृत हुई। बीच में गुरु जनों और छात्रों के बीच मे अन्त्याक्षरी का कार्यक्रम बहुत आकर्षक और आनन्दप्रद रहा। वेणीसंहार नाटक के कर्ण अश्वत्थामा संघर्ष वाले प्रकरण का अभिनय छात्रों द्वारा प्रस्तुत किया गया—उसे प्रेक्षकों ने बहुत पसन्द किया। संस्कृत-साहित्योपाध्याय श्री पं० वागीश्वर जी विद्यालंकार द्वारा प्रणीत एक संवाद में भारत में फैले हुए अंगरेजियत के मोह का चित्रण बहुत सुन्दर हुआ है। उस संवाद का भी छात्रों ने अभिनय प्रस्तुत किया। यह अभिनय भी बहुत मनोरम और प्रभावोत्पादक रहा। एक प्रस्ताव द्वारा शिक्षा विभाग से यह अनुरोध किया गया कि भारत के स्कूलों में माध्यमिक विभाग से संस्कृत भाषा की शिक्षा आवश्यक कर देनी चाहिए क्योंकि संस्कृत-भाषा की बुनियाद के बिना प्रांतीय भाषाओं का विकास और गवेषणाकार्य संभव नहीं। दूसरे प्रस्ताव में संस्कृतज्ञ मनीषियों से प्रार्थना की गई कि संस्कृतभाषा में नये साहित्य का सर्जन प्रारम्भ करें। श्री पं० धर्मदेव जी वेदवाचस्पति, श्री पं० रामनाथ जी वेदालंकार और श्री रुद्रदेव शास्त्री ने स्वरचित कविताएं सुनाईं।

पुरातत्व-संग्रहालय

उत्तर प्रदेशीय सरकार के उपमन्त्री श्री ठाकुर फूलसिंह जी ने संग्रहालय के विषय में निम्नलिखित सम्मति प्रकट की है—

"यह संग्रहालय निःसन्देह इस संस्था का महत्व-पूर्ण अंग है तथा इस में प्रस्तर एवं मृण्मूर्तियों और प्राचीन मुद्राओं का काफी संग्रह है। शोध कार्य में संलग्न ऐतिहासिकों के लिये यह बहुत महत्व रखता है।

मुझे यह देख कर विशेष प्रसन्नता हुई कि एक गैर-सरकारी संस्था इतने मूल्य एवं महत्व की प्राचीन वस्तुओं का संग्रह करने में समर्थ हुई है। मैं उन सब व्यक्तियों को बधाई देता हूँ जिन्होंने इस संग्रहालय के निर्माण करने तथा समृद्ध बनाने में भाग लिया है। आशा करता हूँ कि यह संग्रहालय ऐतिहासिक अनुसन्धान एवं हमारी संस्कृति के पुनरुज्जीवन में महत्वपूर्ण भाग लेगा।

भारत सरकार के पुरातत्व विभाग की उत्खनन शाखा के अध्यक्ष श्री यज्ञदत्त जी शर्मा एम. ए. डी. फिल ने संग्रहालय का अवलोकन कर निम्न सम्मति प्रकट की—

गुरुकुल कांगड़ी का संग्रहालय देखकर आज मुझे प्रसन्नता हुई इस संग्रहालय को प्रारम्भ हुए २३ वर्ष ही हुये हैं किन्तु इतने थोड़े समय में संग्रहालय की उन्नति सराहनीय है।

भारत में लोकशिक्षणार्थ संग्रहालयों की कोने २ में आवश्यकता है। मुझे आशा है कि गुरुकुल का संग्रहालय निकट वर्त्ती निवासियों के लिए शिक्षाप्रद तो होगा ही, दूर से आने वाले दर्शकों के मन में भी यह इतना उत्साह उत्पन्न कर सकेगा कि वे अपने स्थानों में इस प्रकार के संग्रहालय प्रारम्भ कर सकें।

संग्रहालय के अधिकारी बधाई के पात्र हैं। मुझे आशा है कि उनके उत्साह और परिश्रम स्वरूप यह संग्रहालय उत्तरोत्तर उन्नति करेगा।

चहल-पहल और रौनक से विश्वविद्यालय का क्रीड़ा-क्षेत्र २० दिसम्बर से २८ दिसम्बर तक गूंजता रहा। टूर्नामेंट का उद्घाटन कनखल के प्रसिद्ध वैद्य श्री प० धर्मदत्त जी विद्यालङ्कार द्वारा वाद्यों के निर्घोष के साथ हुआ। दिन भर मचों की धूम रहती थी। पञ्चपुरी की प्रेक्षक जनता के कारण वातावरण बहुत उल्लासपूर्ण रहा। इस टूर्नामेंट मे अजमेर, कपूरथला, अम्बाला, रुड़की देहरदून, गाजियाबाद, करनाल, मुजफ्फरनगर मुरादाबाद, मेरठ आदि स्थानों से आई हुई कोई २० टीमों मे भाग लिया था। कई स्थानों से दो दो टीम आई थी। स्थानीय दलों की सख्या चार था। इसवार ध्वनि-विस्तारक यत्र का प्रबन्ध होने कारण खेला के समाचार और विवेचनाए सुनाने में बड़ी सुविधा रही। इस टूर्नामेंट मे अम्बाला टीम का खेल अतिशय पसद किया गया। यद्यपि वह टीम विजयी नहीं हो सकी, तथापि अपने क्रीड़ा कौशल और खिलाड़ियों के सगठन का अद्भुत प्रभाव दर्शकों पर छोड़ कर गई है। उनके कप्तान श्री राजेन्द्र भाटिया (जो कि पजाब के चुने हुए खिलाड़ी हैं) ने अपने खेल के कारण बड़ी वाह-वाही प्राप्त की। अन्त में रुड़की इण्डिपेण्डेंट और सिटी क्लब कपूरथला की टीमों में जबरदस्त मुकाबला रहा, और एक गोल द्वारा रुड़की इण्डिपेण्डेण्ट विजयी रही। २८ ता० को श्री दीनदयालु जी शास्त्री एम.एल.ए. व्यवसायाध्यक्ष गुरुकुल कागड़ी) के करकमलों से पुरस्कार वितरण किया गया। टूर्नामेंट के सर्वश्रेष्ठ तीन खिलाडियों के रूप में निम्नलिखित खिलाड़ियों को पदक प्रदान किए गये। श्री राजेन्द्र भाटिया (अम्बाला) श्री ब्र० सुधाकर (गुरुकुल कांगड़ी), श्री किशनसिंह (रुड़की)। इसके अतिरिक्त देहरादून के श्री आशानन्द और गुरुकुल के ब्र० रवीन्द्रनाथ भी अपनी खेल पटुता के कारण विशेष पुरस्कार के भागी हुए।

टूर्नामेंट के आयोजन और सुप्रबन्ध के लिए ब्र० शीलकात (क्रीडा मन्त्री) ब्र० रवीन्द्रनाथ (हॉकी दल के कप्तान) और ब्र० अनन्तकुमार (उप क्रीडा मन्त्री) का पुरुषार्थ और उत्साह प्रशंसनीय रहा। अतिथियों और खिलाडियों के आगत-स्वागत और भोजन आदि के प्रबन्ध के लिए ब्र० भूदेवराव, ब्र०वेदप्रकाश (बयाना), ब्र० सोमदेव, ब्र० महेन्द्र सिंह १२ श, ब्र० ओमप्रकाश १५ श और श्री ब्र० जयदेव १५ श, विशेष म धुवाद के पात्र हैं।

इस वर्ष टूर्नामेंट का व्यवस्था और शोभा दर्शनीय थी। पिछले कई वर्षों से ऐसा सुव्यवस्थित और शानदार क्रीडा आयोजन नहीं हुआ।

"दुर्गादास" का अभिनय

इस बार श्रद्धानन्द पर्व पर महाविद्यालय के छात्रों ने बगीय-नाट्यकार श्री द्विजेन्द्रलाल राय के प्रसिद्ध नाटक दुर्गादास का अभिनय प्रस्तुत किया था। यह अभिनय बडी कुशलता और सफलता के साथ सम्पन्न हुआ। पिछले कई वर्षों से इतना सफल अभिनय नहीं हुआ था। प्रेक्षकों द्वारा ब्र० सत्यव्रत (दुर्गादास), ब्र० रणवीर (दिलेरखा), ब्र० महेन्द्र द्वादश श्रेणी (शाहजादा अकबर), ब्र० विश्वप्रकाश (मुगल सनापति) और ब्र० अनन्तकुमार (सम्राट् औरगजेब) के अभिनय विशेष रूप से प्रशसित और पुरस्कृत हुए। अभिनय स्थल का बाह्य साजसज्जा, रूपविधान और सुव्यवस्था का सम्पूर्ण श्रेय ब्र० ओम् प्रकाश भरतपुरी तथा ब्र० वेदप्रकाश (बयाना) को है।

सगीत-गोष्ठी

श्रद्धानन्द पर्व के दिनों में एक रात्रि को कविगोष्ठी और सगीत गोष्ठी का सम्मिलित कार्यक्रम रखा गया था। जिसमें पञ्चपुरी के कृतिकारों ने भी भाग लिया था। कवि गोष्ठी के सभापति श्री प० वागीश्वर जी विद्यालकार थे, और सगीत गोष्ठी के सभापति श्री प० बुद्धदेव जी विद्यालकार थे। ब्रह्मचारियों के वृन्दवादन (आर्केस्ट्रा) का कार्यक्रम बहुत अच्छा रहा। श्री प० बुद्धदेव जी ने अपने शास्त्रीय गीतों के प्रवाह से रसिक-समाज को खूब आह्लादित किया।

गुरुकुल समाचार

ऋतु

दिसम्बर मास का करारा जाड़ा महीने भर व्याप्त रहा। पूर्व दिशा की ठंडी हवाएं बराबर चलती रहीं। शिशिर का प्रभाव भी उपवनों में यत्रतत्र दृष्टिगोचर होने लगा है। शहतूत के वृक्ष पत्रविहीन हो गये हैं। गुलाब की कलियाँ ठिठर कर अनखिली रह गई हैं।

कुन्द की झाड़ियाँ कुसुमित हो रही हैं। गुरुकुल की गेहू की खेतियाँ लहरा रही हैं। बड़ी प्रतीक्षा के पश्चात् शीतकालीन वर्षा की कुछ झपटें पृथ्वी को ऊपर ऊपर से भीनी कर सकी हैं। परन्तु अभी विशेष वर्षा की आवश्यकता बनी हुई है। कई दिन आकाश मेघाच्छादित रहा परन्तु वारिश नहीं हुई। दिसम्बर मास में शीत का निम्नतम मान ४१ अंश(फ र्नहाइट) तक रहा। और उष्णता का मान ७४ अंश तक गया। कुलवासियों का स्वास्थ्य सुहावना है।

पढ़ाई

विद्यालय विभाग की नवमासिक परीक्षाएं २४ जनवरी से प्रारम्भ होंगी। अतः छात्रगण अध्यापन में खूब दत्तचित्त है, दिन भर कक्षाएं मुक्ताकाश के नीचे सुहावनी धूप में ही लग रही हैं। अतः दिन में विद्यालय के आस पास के प्रागण और शाद्वल-क्षेत्र छात्र मण्डलियों से विभूषित और सजीव हो उठते हैं।

विशेष व्याख्यान

दिसम्बर के उत्तरार्ध में कुल के सुयोग्य स्नातक विद्यामार्तण्ड श्री पं० बुद्धदेव जी विद्यालङ्कार अपने वैदिक अनुसन्धान के सिलसिले में कुल में आकर रहे। उनकी संगति का छात्रों ने ठीक ठीक लाभ प्राप्त किया। वागवर्धिनी सभा की ओर से वेदार्थ की छान-बीन के विषय में आपके छः खोजपूर्ण और विचार-प्रबोधक व्याख्यान हुए। पांच व्याख्यानों में विनियोग-वाद और अदृष्टवाद की प्रचलित प्रणाली का आपने प्रबल युक्तियों व प्रमाणों से खंडन करते हुए वेदार्थ की सच्ची शैली का निरूपण किया। छठे व्याख्यान में आपने ललित-कलाओं की मीमांसा करते हुए जीवन में उनकी उपयोगिता बताई। सङ्गीत-शास्त्र के माध्यम से आपने उदाहरण देते हुए रस-शास्त्र पर भी विवेचन किया और प्रगतिवाद की चालू प्रवृत्तियों का न्यक्कार करते हुए सुरुचिवाद और आदर्शवाद के प्रवर्तन पर विशेष बल दिया। आपके व्याख्यान बड़े प्रोत्साहक, मार्मिक और तत्वान्वेषी रहे। विद्यालय-विभाग के छात्रों के आग्रह से उनके समक्ष भी "अग्निहोत्र" के वैज्ञानिक स्वरूप पर बालकोचित शैली में आपने दो व्याख्यान दिये।

श्रद्धानन्द-बलिदान-दिवस

प्रतिवर्ष की भाति यह पुण्य दिवस कुलवासियों ने बड़े उत्साह और स्नेह से मनाया। प्रातः समस्त कुल-वासी श्रद्धानन्द-द्वार से शोभा-यात्रा (जुलूस) के रूप में व्यवस्थित होकर झंडा-चौक में समवेत हुए। शोभा-यात्रा के आगे आगे समूह-वाद्य बज रहे थे। बीच बीच में चौराहों पर छात्रगण हर्षोत्फुल्ल होकर कुलगौरव के गान गाते आ रहे थे और कुलपिता के जयनारों से गगन गुंजा देते थे। झंडा-चौक में श्री आचार्य प्रियव्रत जी ने कुल पताका फहराते हुए कुल के आदर्शों और उद्देश्यों के प्रति कुलवासियों को प्रबोधित किया। इसके अनन्तर वेदमन्दिर में स्मृति-सभा आयोजित हुई। जिसमें छात्रों तथा गुरुजनो ने श्रद्धेय कुलपिता की जीवन-दृष्टि और कार्य-कलापों पर भक्ति भाव से विचार किया। पर्व पर भेजे गये अनेक भारतीय मनीषियों, शिक्षाविदों, नेताओं और लोकसेवक देशभक्तों के सन्देश व श्रद्धाञ्जलियाँ सुनाई गई। सन्देशों में श्री जयचन्द्र विद्यालङ्कार का सन्देश बहुत मार्मिक था (वह अन्यत्र दिया है) श्री आचार्य जी के भाषण के पश्चात् सभा समाप्त हुई।

श्रद्धानन्द हॉकी टूर्नामेंट

प्रतिवर्ष की भाँति इस वर्ष भी श्रद्धानन्द पर्व की पुण्यस्मृति में आयोजित विशाल हॉकी टूर्नामेंट की

साहित्य-परिचय

[प्रत्येक पुस्तक की दो प्रतियां आनी आवश्यक हैं। एक पुस्तक प्राप्त होने पर केवल प्राप्ति स्वीकार दिया जा सकेगा। —सम्पादक]

कोषकला—लेखक श्रीराम चन्द्र वर्मा, प्रकाशक साहित्य रत्नमाला कार्यालय, २० धर्म कूप, बनारस। पहला संस्करण, पौष २००६, आकार २०×३०। १६ पृष्ठ संख्या १५६, मूल्य १॥)।

जहां तहां से शब्द इकट्ठे करके एक क्रम में रख देने मात्र से कोश नहीं बनते। कोश बनाना अत्यन्त कठिन, जटिल और श्रम साध्य कार्य है। कोशकार को जहां विविध भाषाओं का ज्ञान होना आवश्यक है वहां उसे विभिन्न ज्ञान-विज्ञानों तथा परम्पराओं से भली भांति परिचित होना आवश्यक है। वस्तुतः यह ऐसा कार्य है जो ऐसे कई विद्वानों के सम्मिलित प्रयत्न से सम्पन्न होना चाहिए जो कोश-कला से सम्यकृतया परिचित हैं। किन बातों का ज्ञान होने से आदर्श कोश रचा जा सकता है यह प्रस्तुत पुस्तक में नौ प्रकरणों में समझाया गया है। कोशों के प्रकार और रूप क्या हैं, कोशकार में क्या गुण होने चाहिएं, शब्दों के संग्रह में किन बातों का ध्यान रखा जाय, शब्दों का क्रम क्या हो, शब्दों की निरुक्ति किस प्रकार दी जाय इत्यादि बातों को सिलसिलेवार और उदाहरणों सहित दिया है। चिरकाल से कोश-निर्माण के कार्य में लगे रहने के कारण लेखक को कोशकार की कठिनाइयों का भलिभांति अनुभव है। हिन्दी में अनुदन जो 'कैंची लेई कोश' बनाये जा रहे हैं उनके प्रणेताओं और प्रकाशकों की आंखे यह पुस्तक खोल सकती है और उनके लिए अच्छे मार्गदर्शक का कार्य कर सकती है।

परिशिष्ट में प्रतिमान शब्दावली के मुद्रण सम्बन्धी पहलू पर एक बात ध्यान देने योग्य है। शब्द को लेखक ने नये पैरा से और मोटे टाइप में दिया है। शब्द के अर्थों आदि को दिखाते हुए मुहावरे, विशेष वक्तव्य आदि फिर नये पैरे से शुरू कर के उसी टाइप में दिये हैं जिसमें शब्द हैं। हमारी सम्मति में शब्दों का टाइप अवश्य भिन्न होना चाहिए जिससे पाठक की निगाह सीधा शब्द पर पड़े और बीच में न अटके।

संस्कृत शिक्षा (प्रथम और द्वितीय भाग)—लेखक श्री आचार्य विद्यानन्द विदेह। प्रकाशक वेद संस्थान, अजमेर। आकार २०×३०। १६ दोनों में पृष्ठ संख्या १४, १४। मूल्य प्रत्येक भाग तीन आना।

वेद संस्थान का उद्देश्य वेद को विश्व धर्म बनाना और संस्कृत को विश्व-भाषा बनाना है इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए प्रस्तुत प्रकाशन किए गये हैं प्रथम भाग में वर्णों के ठीक-ठीक उच्चारण बताये गये हैं।

दूसरे भाग मे सन्धि का ज्ञान कराया गया है। संस्कृत सीखना चाहने वालों को ये पुस्तकें बहुत सहायता देंगी। हमारी शालाओं में संस्कृत सीखने की जो पुस्तकें हैं उन में वैदिक स्वरों और उच्चारणों का ज्ञान नहीं कराया जाता। इस पुस्तक में उन का ठीक ज्ञान कराया गया है। पुस्तक उपयोगी है।

—रामेश बेदी।

प्राप्ति स्वीकार

डिवाइन लाइफ—लेखक स्वामी शिवानन्द सरस्वती मू० १॥)।

डेली मेडिटेशन्स—लेखक वही। मूल्य ३॥ दोनों पुस्तकों के प्रकाशक शिवानन्द आश्रम, ऋषीकेश हैं।

★

मुद्रक—श्री हरिवंश वेदालङ्कार। गुरुकुल मुद्रणालय, गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार।

प्रकाशक—मुख्याधिष्ठाता, गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार।